ॐ

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

श्रीहरिभक्त शिरोमणि काशीनाथ भट्टाचार्यकृत

श्रीपाण्डव-भक्तिपरिचय

अर्थात्

दुर्वासातृप्तिस्वीकार नाटक

जिसको

हरिभक्तों के विनोदार्थ

श्रीकृष्णमण्डल राजपूताना की प्रेरणा से
गवर्नमेण्ट हाईस्कूल के प्रथमाध्यापक
साहित्योपाध्याय शिवदत्त
काव्यतीर्थ ने आर्यभाषा
द्वारा निर्माण किया

और

श्रीहरिश्चन्द्र त्रिवेदी प्रबन्धकर्त्ता के प्रबन्ध से
वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित.

संवत् १९७२.

प्रथमावृत्ति १००० | नृसिंहजयन्ती | मूल्य ।-)। आना.

समर्पण ।

श्रीकृष्णचन्द्र ! आनन्दकन्द ! भक्तवत्सल ! यदुनाथ ! श्रीवेदव्यासादि महर्षियों ने जो उत्तमोत्तम पद्यरत्नों द्वारा आपका गुणगान किया है। उन्हीं में से एक रत्नखण्ड को लेकर भक्तिरूपिणी अँगूठी में जड़, विविधविद्या-विशारद पारसीक-कुलावतंस गुणग्राहक आस्तिकशिरोमणि श्रीमान् मेहरजी बी. डी, महोदय के करकमलों द्वारा आपकी पवित्र सेवा में यह स्वर्णाभरण सादर समर्पित करता हूं जिसे शबरी के बोर सुदामा के तण्डुल की भाँति स्वीकार कर कृतार्थ कीजिये ।

शिवदत्त त्रिपाठी.

भूमिका ।

एक समय मेरे मित्र पण्डित मगननाथजी मिश्र ने मुझ से कहा था कि राजपूतानान्तर्गत श्रीकृष्णमण्डल के लिये हरिभक्ति सम्बन्धी एक नवीन नाटक बनाना चाहिये । कि जिससे देश बान्धवों का हित हो, इस बात को सुनकर मैंने उत्तर दिया कि उस श्रीकृष्णचन्द्र आनंद-कन्द की कृपा होगी, तो हरिभक्तों के विनोदार्थ एक नाटक रचने का प्रयत्न करूंगा। उस बात को बहुत समय बीत गया पर कोई अवसर नहीं मिला । संयोगवश मेरे अनुज रामदत्त त्रिपाठी का जाना कृष्णगढ़ हुआ । वहां पुराणे सम्बन्धी पण्डित वशिष्ठ शास्त्री (काकड़ा) द्वारा श्रीयुत काशीनाथ भट्टाचार्यकृत "दुर्वासातृप्तिस्वीकार" नाम का जीर्ण पुस्तक मिला । उसको यथा कथंचित् सुव्यवस्थित करके यथावकाश भाषानु-वाद करता रहा । जब समाप्त हुआ तब "नैकाकी निर्णयं कुर्यात्" इस नीति के वचनानुसार मैंने श्रीपुष्करनिवासी यतिवर श्रीमान् ब्रह्मानंदजी स्वामी महाशय तथा श्रीकृष्णगढ़ाधीश १०८ श्रीमदनसिंहजी महाराज, सी. एस. आई. के. सी. एस. आई. की राजसभा से काव्यालंकार की पदवी प्राप्त श्रीयुत कविवर जयलालजी को चित्त के परितोषार्थ दिखाया उन दोनों ही महाशयों ने अवलोकन कर मेरा उत्साह बढ़ाया जिसके लिये उन तीनों ही महानुभावों को अनेक धन्यवाद देता हूं और अन्त में उस श्रीकृष्णचन्द्र के कृपाकटाक्ष का सादर अभिनंदन करता हुआ सब गुणज्ञ सज्जनों की सेवा में सविनय निवेदन करता हूं कि मैं सर्वथा नाटक लिखने के योग्य नहीं, पर "दुर्योधन को मेवो त्याग्यो शाक विदुरघर पायो" ऐसे भाव के भूखे भगवान् के गुणगान करना अपना धर्म समझ इसकी रचना की है सो जैसे दयालु 'हरि' वैसे ही 'हरिभक्त' सो अपनी दयालुताद्वारा इसका सार ग्रहण कर लाभ उठावेंगे और जो भूलचूक हुई हो उसको अपने उदार आशयद्वारा सुधार, मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करेंगे ॥

विशेषु किमधिकम् ॥

शिवरात्रि,
संवत् १९७१,
अजमेर.

आपका—
शिवदत्त शर्मा.

नाटक के पात्र ॥

राजा युधिष्ठिर (नायक)	राजा दुर्योधन (प्रति नायक)
भीमसेन (महारथि)	भानुमती (महाराणी)
अर्जुन ,,	दुःशासन (युवराज)
नकुल ,,	कर्ण (महारथि)
सहदेव ,,	शकुनि (राजा का मामा)
महाराणी द्रौपदी	कंचुकी (द्वारपाल)
श्रीकृष्णचन्द्र सहायक (उत्तम पात्र)	दुर्वासा (सहायक उत्तम पात्र.)
श्रीरुक्मिणी	शांतिवर्म्मा (शिष्य)
सुकेशी (दासी)	सत्यव्रत (शिष्य)
सुलोचना (दासी)	अहिंसानंद (शिष्य)
धौम्य (पुरोहित)	सुवदना (दासी)
धौम्यपत्नी	सुशीला (दासी)
शिवशर्मा (शिष्य)	सूत्रधार.
रामशर्मा (शिष्य)	नट
पिप्पलाद महर्षि आदि विप्रवृन्द	नटी
कौण्डिन्य (शिष्य)	
मेधातिथि (शिष्य)	
गन्धर्व	
अप्सरा	

पुस्तक मिलने का पताः—

रामदत्त त्रिपाठी,

हेडपण्डित,

मिशन हाईस्कूल,

अजमेर.

ॐ

॥ श्रीदम्भिगर्णेशाय नमः ॥

ओं विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

अथ

श्रीपाण्डव-भक्ति-परिचय अर्थात्
दुर्वासातृप्ति-स्वीकार
नाटक ।

स्थान—रङ्गभूमि ।

रङ्गभूमिमें नान्दी मङ्गलपाठ करता है ।

प्रणति मोरि स्वीकार करि, सफल करो सब काज ।
ऋद्धि सिद्धि के बीच में, राजमान गणराज ॥

मंगल माधव का धर ध्यान ।

मंगल वदन कमलकर मंगल, मंगल नंद नँदन हिय ठान ।
मंगलकरन गोवर्द्धनधारी, मंगलवेष कृष्ण कर मान ।
मंगल धेनु रेनु भुव मंगल, मंगल माखन मिसरी खान ।
मंगल गोपवधू परिचन्दन, मंगल मुरली की धुन कान ।
मंगल मथुरा मंगल गोकुल, मंगल वृन्दावनसो थान ।

मंगल जमुना तट वंसीवट, मंगल कालिन्दी पयपान ।
मंगल देखत पूजत मंगल, गावत मंगल वेद वखान ।
मंगल श्रवण कथारस मंगल, मंगल कीरति देवै दान ।
मंगल चरण कमल मणि मंगल, मंगलमय है श्री भगवान ॥

दिनमणि करै प्रकाश, तेज जिसका धारण कर ।
जड़ होवै चैतन्य शक्ति, जिस ही की पाकर ॥
उत्पति थिति अरु नाश, देखि जो मान्यो जावै ।
वही शुद्ध प्रतिविम्ब, सत्व श्रीकृष्ण कहावै ॥
इच्छा से अवतार ले भक्तों के संकट हरै ।
ऐसो कृपानिधान वह सब ही की रक्षा करै ॥

नान्दी के अनन्तर सूत्रधार और नट आते हैं ।

सूत्रधार— श्रीकृष्णचन्द्र ! आनन्दकन्द ! अपरम्पार महिमा है आपकी, जिसका कि वर्णन करना साक्षात् सरस्वती तथा श्रीगणेशजी के लिये भी दुष्कर है । प्रभो ! बड़े २ इन्द्रादि देव भी कल्पवृक्षों के पुष्पों की मालाओं से विभूषित मुकुटों को आप के चरणारविंदों में नवाय कृतकृत्य हुए हैं । हे नाथ ! श्रीवेदव्यासादि ऋषीश्वरों ने उत्तमोत्तम वेदमंत्ररूपी रत्नों को खोज खोज कर आप का ऐश्वर्य दिखाया है । हे जगदीश्वर ! आप अनेक ब्रह्माण्डरूपी भाण्डों को बना बना कर विश्वकर्मा कहलाये हैं । हे दीनबन्धो ! आप ने जब जब धर्म का ह्रास और अधर्म का उत्थान देखा है तब तब ही इच्छानुसार अवतार धारण कर प्रचण्ड पाखण्डियों का दमन और भक्तों का संरक्षण कर संसार का अत्यन्त ही उपकार किया है ॥ (कुछ आगे बढ़कर) अहा, हा हा ! यहां आज तो उन्हीं का भक्तमण्डल (श्रीकृष्णमण्डल) जुड़ा है, जिस में बड़े २ साधु, महात्मा, ज्ञानी, विज्ञानी, राजा, बाबू,

एम. ए, बी, ए., पण्डित, कवि, सेठ साहूकार आदि गुणग्राहकों का वृन्द विराजमान हुआ है। मेरी इच्छा है कि इन्हें कोई अच्छासा नाटक दिखाना चाहिये।

नट—भाई! इस बात को तो आप जानते ही हैं कि इस सभा में जो जो महानुभाव पधारे हैं, उन्हों ने वेदादि शास्त्रों के पठन और साधुसंगति से यमनियमादि योगाङ्गों की सहायता ले अन्तःकरणरूपी क्षेत्र में उगे हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, अहंकार और नास्तिकत्वादि रूप कांटों को जड़ से उखाड़ उस पवित्र क्षेत्र में भक्तिरूपिणी लता का बीज बोया है, जिस के फूल और फलों की सुगन्ध और माधुर्य के आगे स्वर्गादि लोकों का सुख तुच्छ जान पड़ता है सो मेरे विचार से तो कोई हरिभक्ति-सम्बन्धी नाटक खेल कर ही इनका मनोरञ्जन करना उचित है।

सूत्रधार—ऐसा कौनसा नाटक है?

नट—भाई! आजकल कलियुग है। इस युग में प्रायः स्त्रियों ही में अधिक भक्ति पाई जाती है सो जाकर पहिले अपनी नटनी से सम्मति लेआऊं।

सूत्रधार—अच्छा भाई! तो जाओ और अपनी नटनी से बूझ आओ। (गये)

नट—(नेपथ्य की ओर धीरे से पुकारता है) चन्द्रकला! चन्द्र-कला!! हे प्रिये चन्द्रकला!!! बोलती नहीं क्या सोगई? (नटी का प्रवेश)

नटी—प्रियतम! क्या कोई आवश्यक कार्य है?

नट—कार्य तो आवश्यक ही है, परन्तु यह तो बताओ इस समय तुम क्या कर रहीं थीं?

नटी—स्वामी ! मैं क्या बताऊं, कुछ कहा नहीं जाता।

नट—प्यारी ! कुछ संशय की बात तो नहीं ?

नटी—प्राणनाथ ! संशय तो आपके शत्रुओं को, मैं तो आपही की मनोहर मूर्त्ति को देखकर सदैव प्रसन्न रहती हूं। नाथ ! सत्य तो यह है कि इस समय में एक अनोखा नाटक पढ़रही थी।

नट—प्यारी ! तो तुम्हारे मुखपर मंद हास क्यों नहीं सो कहो, ऐसा कौनसा नाटक है ?

नटी—प्राणेश्वर ! पाण्डव-भक्ति-परिचय (अर्थात् दुर्वासा-तृति-स्वीकार) इसका नाम है। भक्तशिरोमणि काशीनाथभट्टाचार्यने इसको संस्कृत में रचा है।

नट—प्यारी ! आज तो मुझे इस बात को सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि तुम तो अब संस्कृत भी पढ़ लेती हो।

नटी—प्राणवल्लभ ! मुझको भी आज आपकी बात सुनकर बड़ा अचरज हुआ कि जब आजकल के अच्छे २ पढ़े लिखे लोगों की संतान संस्कृत को मृतभाषा (Dead language) कहा करते हैं। अन्य भाषाओं में तो बड़ी बड़ी उपाधियां पाते हैं, पर इस भाषा के शब्दों को बातचीत में लाते हुए भी हिचकते हैं, फिर कहिये स्त्रियां कैसे संस्कृत पढ़ सकती हैं ?

नट—यह तो तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, पर यह तो बताओ कि उसकी भाषा किसने बनाई है।

नटी—जीवनाधार ! अजमेरनिवासी शिवदत्त त्रिपाठी ने।

नट—उस नाटक को तो मैंने भी पढ़ा है जैसा तुम बताती हो वास्तव में वैसा ही है।

नटी—स्वामी! बातों ही बातों में बिलम गये, आपने तो अपना मनोरथ भी प्रकट नहीं किया।

नट—प्यारी! मैं तो इसलिये आया था कि आज श्रीकृष्ण भक्तों का मण्डल बड़े समारोह के साथ जुड़ा है। उसमें गुणी पुरुषों को एक नाटक दिखाने की मेरी इच्छा है। जिसमें विशेष विचार दुर्वासातृप्ति-स्वीकार नाटक पर ही है क्योंकि मैंने भी आज ही इस को आद्योपान्त पढ़ा है और तुम भी पढ़ रहीं थीं, इस बात की सम्मति लेने आया हूं।

नटी—कान्त! मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं करती, परन्तु द्रौपदी बनने की मेरे में सामर्थ्य नहीं। कारण जब पढ़ने ही में चित्त को सन्ताप प्राप्त हो तब साक्षात् स्वांग बनने से न जाने क्या दशा होजाय। नाथ! मैंने द्रौपदी की जो करुणा पढ़ी, वह प्रत्यक्ष मेरे नेत्रों के संमुख दिखाई देती है। हाय! वह कैसे ऐसी महारानी होकर वन में रही होगी? और जब महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि ने पाण्डव और द्रौपदी के भोजन के उपरान्त आकर भोजन मांगा होगा तब उसकी क्या दशा हुई होगी? मैं अधिक क्या कहूं वह तो श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा के भरोसे धीरज धारण करने से बच गई, पर मेरी तो लज्जा और भय के मारे न जाने क्या दशा हो जाय।

नट—प्यारी! तुम तो किसी बात की चिन्ता मत करो, इस नाटक में तो अपने "दोनों ही हाथ लड्डू हैं" जब कष्ट की बात आजाय तब एकाग्र हो, भगवान् का स्मरण करेंगे, जिससे सहज ही में ध्यानयज्ञ

चन आजायगा और जो संकट के मारे प्राणों को छोड़ेंगे तो वैकुण्ठ धाम वना वनाया ही है।

नटी—अच्छा प्राणनाथ! आपने अच्छा उत्साह दिलाया। मैं तो द्रौपदी का वेष धारण करती हूं और आप अपने इष्ट मित्रों को धर्मराज युधिष्ठिर, राजा दुर्योधन आदि का वेष धारण कराइये। (दोनों जाते हैं)

(सूत्रधार और नटका प्रवेश)

नट—सूत्रधार! सावधान हो, मैं नटनी से बूझ आया। आज पाण्डव-भक्तिपरिचय (दुर्वासातृप्ति-स्वीकार) नाटक होगा।

सूत्रधार—वाह भाई! वाह! यह तो नया ही नाटक रच के लाये?

नट—भाई! यदि उस जगदीश्वर की कृपा रही तो नित नये ही नाटक रचे जावेंगे?

सूत्रधार—(सब ओर देखकर) हे महाशयो! आप से मैं निवेदन करता हूं कि श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति के प्रभाव से वा महाभारत के प्रसंग को सुनने की इच्छा से वा कवि के परिश्रम की ओर ध्यान देकर वा नाटक देखने के कुतूहल से इधर इसके देखने में सावधान हूजिये। और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखिये कि इस सभा में पुष्पांजलि की भांति यह नाटक समर्पित किया जाता है सो जैसे भौंरे पुष्पांजलि के बिखरे पुष्पों के रस को, वैसे आप इसके सार को ग्रहण कीजिये। (सब गये)

इति प्रस्तावना॥

(स्थान–मंत्रणागृह)

(महाराज दुर्योधन सिंहासन पर विराजमान हैं और आस पास कर्ण, शकुनि और दुःशासन बैठे हैं)

दुर्योधन—(कर्ण की ओर देखकर) मित्र अंगराज ! अपने ने द्यूत-दक्ष मामा शकुनि की सहायता से कपट के पासे फेंक चँवर छत्र सहित पाण्डवों का राज, पाट, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादा, दास, दासी आदि सब छीन लिये । यहांतक कि उनकी पटराणी (द्रौपदी) की सभा के बीच ऐसी दुर्दशा की तो भी धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर की कीर्त्तिकौमुदी वैसी की वैसी उज्वल बनी है ।

सखे ! चाहे मैं सुवर्ण के सिंहासन पर बैठा रहूं वा अपने सामन्तों के साथ वाग्विलास करता रहूं वा महाराणी (भानुमती) के साथ चौपड़ खेलता रहूं, उद्यान में रहूं वा वन में, शत्रुओं के साथ युद्ध करता रहूं वा फूलों की सेज में आराम करूं, पर मेरे कानों में अर्जुन ही अर्जुन की बड़ाई सुनने में आती है ।

वीणा ले के सुरयुवतियां कुण्डलों को हिलातीं ।
श्रीब्रह्माणी प्रभृति सबही देवियों को मनातीं ।
फूलीं फूलीं शुभ समय में दर्शकोंको रिझातीं ।
गावें कुन्ती सुत विरद को तालियों को बजातीं ॥

दुःशासन—(हाथ जोड़कर) महाराज ! नीति का उपदेश है कि बिना पूछे भी स्वामी को हित की बात कहनी चाहिये ।

दुर्योधन—वत्स ! कहो । हित की बात तो बालक की भी सुननी चाहिये ।

दुःशासन—राजाधिराज! आप शीघ्र ही शत्रुओं का नाश कीजिये। क्योंकि ऋण, अग्नि, रोग और शत्रु इनको उठते ही दबाना चाहिये। समय पाकर जब ये जड़ जमा देते हैं तब उखाड़ना बड़ा ही कठिन हो जाता है।

रिपुको छोटो जानकर, करैं न शमन उपाय।
तो वह वन की आगसम, बढ़त बढ़त बढ़ जाय॥

फिर देखिये अभीतक तो सब प्रकारसे पाण्डव अपने से निर्बल हैं और बड़े २ शूरवीर अपने ही पक्ष पर हैं।

रावण ने जीता जग सारा। कार्त्तवीर्य ने उसे पछारा॥
परशुराम जिस के मदहारी। भीष्म उन्हींसे भी हैं भारी॥
द्रौण सरिस गुरुदेव हमारे। धनुर्वेद जिनने हिय धारे॥
पुत्र उन्हींकी समता धारी। फिर क्यों होवै हार हमारी॥
कर्ण महारथि रणमें जावें। तो रिपुसंघहिं तुरत नसावें॥
ऐसे परममित्र जब ताता!। तो सब विधि अनुकूल विधाता॥

सो अब विलम्ब करना उचित नहीं। शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे और सेनापतियों को सजद्ध कर के शत्रुओं का नाश करना चाहिये।

कर्ण—(आप ही आप) अभी तो कँवरपद पर हैं सो "रावलै रोटी खाई है (प्रकट) हे वीर! धन्य है तुम्हारा रणोत्साह, पर इस बात को भी जानते हो कि नहीं?

दुःशासन—किस बात को?

कर्ण—जिस के बाहुबलरूपी फन्दे में पड़कर हिड़म्बासुर जैसा बल राक्षस यमलोक को पहुंचा। क्रोधसहित जिसकी लात धरती पर गेरे तो पहाड़ क्या पृथ्वी भी हिलने लगे। जिसके मारने के लिये विष

की कुछ गिनत नहीं। जिसके श्वास निःश्वास भयंकर सर्प से भी अधिक भयदाई हैं और जिसके बल की तुलना दस सहस्र हाथियों के साथ की जाती है। ऐसे महापराक्रमी भीम को युद्ध में जीतना क्या खीरका कटोरा पीना है ?, फिर सुनो—

देवन से भिड़जायँ तऊ नहिं संकत हैं अस दैत्य कुमारा।
वे पड़ि गांडिव चक्करमें यमलोक सिधावत नाहिं उवारा॥
क्या तुम जानत हो नहिं ताहि कपिध्वजको गुरुभक्त उदारा।
सोच विचार करो सब काम नहीं तुव हास्य टरै नहिं टारा॥

दुर्योधन—(आप ही आप) कुछ चिन्तातुर होकर (प्रकट) मित्र ! आज तो तुम्हारी बातें सुनकर मेरा चित्त डामाडोल हो गया। क्योंकि इधर तुम्हारे ही तो सब गाजे वाजे हैं और तुम ही पाण्डवों की बड़ाई करने लगे तो फिर इतिश्री है।

कर्ण—(निर्भयता दिखाता हुआ) राजाधिराज ! मैंने जो पाण्डवों की बड़ाई की जिसका अभिप्राय यह नहीं है कि अपन उनसे निर्बल हैं, किन्तु ऐसे प्रबल शत्रुओंको किस प्रकार से नष्ट करना चाहिये इस विचार से कहा है।

दुर्योधन—(शकुनि की ओर देखकर) मामाजी ! आप भी तो कुछ कहिये ?

शकुनि—कुरुराज ! मेरी बुद्धि तो मुझे दूसरा ही मार्ग बताती है सो यह है कि अस्त्र और शस्त्र विद्या में पारंगत तथा रणकी सामग्रियों से सुसज्जित शत्रु, जितना छल से वश में होता है उतना पराक्रम से नहीं।

दुर्योधन—(मंद मुसक्यानकर) मामाजी ! जब छल से ही कार्य सिद्ध हो तो भला आप से बढ़कर इस कला में कुशल कौन होगा ?

शकुनि—(हँसता हुआ) कुरुनाथ ! पहिले तो प्रपंच रचकर पाण्डवों को वनवास दिला दिया। पर वारंवार एक ही युक्ति से काम नहीं चलता।

दुर्योधन—मामाजी ! तब दूसरा उपाय बताइये।

शकुनि—अब के इन पाण्डवों को ब्राह्मणोंसे भिड़ाना चाहिये।

दुर्योधन—मामाजी ! यह बात तो सर्वथा असंभव है क्योंकि राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों का परमभक्त है।

शकुनि—महाराज ! इस काम में सात्विक ब्राह्मणों से काम नहीं चलता, किन्तु उग्रस्वभाववाले दुर्वासा ऋषि जैसों से भिड़ाकर शाप-द्वारा नाश करना चाहिये।

जो हरिहर रखवाल हों, होय वज्र सम थान।
तो भी कबहुं न मिटत है, विप्रशाप अस जान ॥

दुर्योधन—(आप ही आप सन्तुष्ट होकर) अहा कैसा अच्छा उपाय बताया। अवश्य ऐसी पाश्चात्यबुद्धि मुझको सफलता देगी। (प्रकट) मामाजी। आपने उपाय तो अच्छा बताया, पर इस उपाय को कैसे काम में लावें।

शकुनि—आजकल ऋषि दुर्वासा एक अनुष्ठान समाप्त कर चुके हैं। अतः उनको निमंत्रण देकर शिष्यों सहित यहां बुलाइये। फिर यथोचित सेवा से उनको प्रसन्न करके आशीर्वाद लीजिये।

दुर्योधन—मामाजी ! बड़ों का कथन है कि अच्छे काम में विलम्ब नहीं करना चाहिये। लो मैं आज ही उनकी सेवा में जाता हूं। (बड़े हर्ष के साथ जाते हैं और सब भी हर्ष से विदा होते हैं)

(स्थान-दुर्वासा ऋषीश्वर का आश्रम)

(कुछ विचारते हुए) आसन पर दुर्वासा ऋषि विराजमान हैं और आसपास शान्तिवर्मा और सत्यव्रत दो शिष्य खड़े हैं।

शान्तिवर्मा—(हाथ जोड़कर) श्रीगुरुदेव ! आज किस विचार में लगे हुए हैं। हमारे पाठ का समय आगया है।

सत्यव्रत—(धीरे से) अरे मित्र ! ऋषिकुल में रहते हैं सो रात दिन पढ़ना ही पढ़ना है। कभी तो अनध्याय का भी आनंद मनाने दे।

शान्तिवर्मा—(हँसता हुआ) रोकता है।

दुर्वासा—वत्स ! मैं भी जानता हूं कि तुम्हारे पाठ का समय आगया। पर मैंने आज स्वप्न में महाराज दुर्योधन को देखा सो आशा करता हूं कि आज उनसे मिलना होगा।

(नेपथ्य में शब्द)

दुर्वासा—वत्स ! द्वारपर जाकर देखो कौन है ?

सत्यव्रत—जो आज्ञा। बाहर जा राजा दुर्योधन को देख निवेदन करता है कि महाराज ! हस्तिनापुर के अधीश राजा दुर्योधन आप के दर्शन के लिये पधारे हैं।

दुर्वासा—वत्स ! शीघ्र लाओ।

(राजा दुर्योधन का ऋषि शिष्यसहित प्रवेश)

दुर्योधन—ऋषि को देखकर (आपही आप) अहो तपस्या की महिमा अद्भुत है। इनको देखते ही मन को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त

होती है (प्रकट) हे ऋषिराज ! यह कुरुवंशी दुर्योधन सादर अभिवादन करता है।

दुर्वासा—शिवमस्तु। सत्कार सहित आसन देते हैं और राजा निर्दिष्ट आसन पर बैठते हैं।

दुर्वासा—राजन् ! प्रजा में सब प्रकार सुख शान्ति है ?

दुर्योधन—श्रीमहाराज ! आप की दया से सब आनंदित हैं।

दुर्वासा—राजन् ! तब तो बहुत अच्छी बात। अब आप अपने आगमन का कारण कहिये ?

दुर्योधन—महाराज ! इन दिनों में आपने जो अनुष्ठान किया उसकी चर्चा दूर २ तक फैलगई। जिससे मेरी उत्कण्ठा हुई कि ऐसे २ तपस्वियों को शिष्यवर्ग सहित स्थान पर पधरा कर गृह पवित्र करना चाहिये।

दुर्वासा—राजन् ! इसमें क्या बड़ी बात है। परमेश्वर ने तपस्या करने ही के लिये ब्राह्मणों को उत्पन्न किया है। तिस पर भी आप श्रद्धापूर्वक बुलाना चाहते हैं तो हम अवश्य आवेंगे। पर समय तथा तिथि नियत नहीं कर सक्ते। क्योंकि हम जप तप के ही बन्धनों से बद्ध हैं अतः अन्य बन्धनों से बँधना नहीं चाहते।

दुर्योधन—जैसी महाराज की इच्छा। आज्ञा पाकर विदा होते हैं और शिष्य सत्यव्रत पहुंचाने जाते हैं (सब गये)

(स्थान-राजभवन)

(राजा दुर्योधन सिंहासन पर बैठे हैं और आस पास कर्ण, शकुनि और दुःशासन बैठे हर्ष मना रहे हैं).

दुर्योधन—अंगराज! मामा शकुनि के कथनानुसार मैंने महर्षि दुर्वासा को निमंत्रण दिया। जिस पर उन्होंने कहा कि कार्यवश तिथि और समय तो नियत नहीं कर सकते, पर एक वार अवश्य आवेंगे।

कर्ण—राजाधिराज! इन दिनों में आप विशेष सावचेत रहिये, क्योंकि न जाने किस समय ऋषि दुर्वासा आजावें।

दुर्योधन—अंगराज! आपकी सम्मति वहुत ठीक है। उन्होंने प्रतिज्ञा की है सो एक वार तो अवश्य आवेंगे।

दुःशासन—कुरुनाथ! तव तो अपना काम अवश्य सिद्ध होगा।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—हे कुरुकुलकमलदिवाकर! नक्षत्रों से भूषित चन्द्रमा के समान दस सहस्र शिष्यों के साथ (कुलपति) दुर्वासा ऋषिजी द्वार पर खड़े हैं।

दुर्योधन—हर्ष सहित एक साथ खड़े होकर और हाथ में अर्घादि की सामग्री लेकर कर्णादि के साथ वाहर आकर ऋषि के दर्शन कर अर्घ भेटकर साष्टांग प्रणाम कर भीतर शिष्यों सहित लेजाते हैं। और आसन पर विराजमान कर हाथ जोड़ प्रार्थना करते हैं कि हे कृपासिन्धो! आपने वड़ी कृपा की जो शिष्योंसहित पधार मेरे स्थान को पवित्र किया।

दुर्वासा—राजन्! इसमें कृपा की क्या बात है। जो प्रीतिपूर्वक साधारण जन बुलावे तो उसके भी जाना चाहिये। जिसमें आप तो नराधिप हो।

दुर्योधन—महाराज! यह तो आपकी कृपा है।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज! सुवदना ने आकर सूचना दी है कि श्रीमती महाराणी भानुमती शिष्यों सहित ऋषिराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं और भोजनसामग्री सब सिद्ध है।

दुर्योधन—अच्छा तुम जाओ और सूचना देदो कि ऋषिराज पधारते हैं।

कंचुकी—जो आज्ञा! जाता है। ऋषि सहित राजा राजमहलकी ओर जाते हैं और सब अपने स्थान को जाते हैं।

(स्थान—अन्तःपुर)

भोजनादिसे निवृत्त।

(शिष्यों सहित महर्षि दुर्वासा विराजमान हैं)

(महाराणी भानुमती सहित दुर्योधन एक ओर खड़े हैं और दूसरी ओर सुवदना और सुशीला खड़ी हैं)

दुर्योधन—(आपही आप) जिनके नाम से डरकर यमुनाने गोपियों को मार्ग देदिया। मंत्रशक्ति के प्रभाव से वज्रायुध इन्द्र जैसे देवता को जिनने वशमें कर रक्खा है। और जो साक्षात् ब्रह्मदेव के पोते, जटाधारी, तपस्वियों में शिरोमणि, ऐसे श्रीदुर्वासा ऋषि ने मेरा आतिथ्य स्वीकार किया यह बड़े सौभाग्य का समय है। (प्रकट)

यह संसार गर्त्त है नाथा । विनय करूं मैं जोरे हाथा ॥
विषय वारिसे पूर्ण अगाधा । काल व्याल जहँ देत बाधा ॥
मैं अति दीन पड़्यो दुखपाऊं । निकसन हेत चहां दिशि धाऊं ।
शुभागमन तव नावसमाना । अवशि मोर करिहो कल्याना ॥
अस प्रतीति मोरे मन आई । महापुण्य कोइ आज सहाई ।
कृपादृष्टि करि मोहि उबारो । विश्व विदित है नाम तिहारो ॥

दुर्वासा—(आप ही आप) आज क्या सूर्य पश्चिम को उगा जो यह महाभिमानी होकर इतनी दीनता दिखाता है। अवश्य कोई दालमें काला है । (प्रकट) राजाधिराज ! आज शिष्यवर्गसहित हमारा जो यथोचित सत्कार किया जिससे संतुष्ट होकर कहते हैं कि आप कोई वर मांगिये ।

भानुमती—(भानुमती) मंद मुसक्यान करती हुई महाराज दुर्योधन की ओर देखती हुई । आर्यपुत्र ! आज तो पौबारह हैं ।

दुर्योधन—(आपही आप) मंत्रशास्त्र के सांगोपांग रहस्य जानने में आजदिन इनकी बराबरी कौन कर सकता है ?, अतः इनसे निवेदन करके दुःख मिटाना चाहिये । (प्रकट) महाराज ! आप साक्षात् अत्रिऋषीश्वर के पुत्र तपोमूर्त्ति हैं । पुण्य के प्रभाव से आप के लिये सब पदार्थ सुलभ हैं और जो कुछ सेवा को जिससे संतुष्टि मानना यह तो आपका बड़प्पन है । आपकी कृपा से सब प्रकार से कुशल है । यदि वर देने की इच्छा है तो यह वर दीजिये कि जिस प्रकार शिष्यमण्डली सहित अतिथि बनकर यहां पधारे वैसे वनवासी पाण्डवों के यहां भी द्रौपदी के भोजन किये उपरान्त पधारिये ।

दुर्वासा—संकुचित होकर (आप ही आप) ओहो यह तो धर्मावतार राजा युधिष्ठिर को मुझ से शाप दिलाना चाहते हैं। इस बात को यह नहीं जानता कि उनके श्रीकृष्णचन्द्र जैसे पूर्ण सहायक हैं। और मैं ऐसे हरिभक्त को भला कब शाप दूं। अच्छा, सेवा से संतुष्ट होकर वर देना ही पड़ा जिसके निभाने के लिये एक बार राजा युधिष्ठिर के आश्रम पर जाकर अतिथि बनूंगा, (प्रकट) राजन्! एवमेव। अब हम तो आश्रमको जाते हैं और आप भी भोजनादि कृत्य कीजिये। (शिष्यों सहित ऋषि विदा होते हैं और राजा साथ पहुंचाने जाते हैं। सब गये)

(स्थान—मंत्रणागृह)

(महाराज दुर्योधन सिंहासन पर बैठे हैं और आस पास कर्ण, शकुनि और दुःशासन बैठे हैं)

दुर्योधन—(हँसता हुआ) हे अंगराज! मामा शकुनि की युक्ति और आपके अनुमोदन से जो उपाय (ऋषि का आतिथ्य) किया गया जिससे अवश्य अर्थ सिद्ध होगा।

कपट तुल्य साधन नहीं, रिपुवश करने जोग।
जिसके वश में सहज ही, होजावें सब लोग॥

कर्ण--राजाधिराज! आपने अवश्य सिद्धि पाली।

शकुनि—(हंसकर) कुरुनाथ! मेरी माता ने मुझे छल कपट ही की जन्मघूंटी दी थी। जिससे छल कपट की बात तो मुझे ऐसी सूझती है कि जिसकी सीमा नहीं। (मूछों पर हाथ फेरता है)

दुःशासन—वाह मामाजी वाह! आपकी बुद्धि की बलिहारी है, सब हंसते हैं।

इति प्रथमोऽङ्कः॥

अथ द्वितीयोऽङ्कः ॥

(स्थान—वनस्थली)

(सहदेव सहित राजा युधिष्ठिर का भाषण)

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव! देखो यह भूमि कैसी मनोहारिणी है जिसमें कमलों से विभूषित अनेक सरोवर भरे हुए हैं। जहां हंस कारण्डवादि नाना जलपक्षी किलोलें कर रहे हैं। और कहीं भँवरे गुंजार कर रहे हैं। ठौर २ आम, जामुन, केले, नारंगी आदि फलवाले वृक्ष लगे हैं। जिनपर कोयल, सूआ, मैना आदि विहंग शब्द कर रहे हैं। और कहीं २ रंग बिरंग फूलवाली लतायें झुक झुक झूम झूम कैसी शोभा देरही हैं जिनको देखने से चित्त को अत्यन्त आल्हाद प्राप्त होता है। (फिर आकाश की ओर देखकर) अहो क्या प्रभात होने आया। अत्यन्त पवित्र और सुखदाई यह समय है।

तारे तो दिखते यहोत धुंधले तेजी नहीं थोरि भी,
नक्षत्रेश उदास से लखत हैं लीने वियोगी दशा।
प्राची के मुख पै ललाइ फवती सिन्दूर शोभाधिका,
भौंरे छाँड़ि सरोज आसन सभी गुंजार कैसो करें॥

सहदेव—श्रीमहाराज! जैसा बताते हैं वैसा ही पवित्र यह प्रभात का समय है।

अन्धकार गज को निदरि, हरिसमान जस तोर।
रवि के सँग सुरलोक को, गमन करत करि होर॥

आश्रमवासी पढ़त हैं, सस्वर चारों वेद ।
जिनके सुननेमात्र से, शीघ्र मिटें सब खेद ॥
गुरु अनुशासन पाय के, अग्निहोत्र के काज ।
समिधा लेने जात हैं, ऋषिकुमार महाराज ॥

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! नकुल को बुलाओ ।

सहदेव—जो आज्ञा । नकुल को बुलाने जाता है । नकुल सहित लौटते हैं ।

नकुल—प्रणाम करके । श्रीमहाराज की क्या आज्ञा है ?

युधिष्ठिर—वत्स ! यज्ञ के लिये समिध लाओ ।

नकुल—जो आज्ञा । बाहर जाता है ।

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! आज मुझ को शुभ शकुन ही शुभ शकुन दिखाई देते हैं ।

ब्रह्ममुहूरत में जब जागा । दक्षिण नेत्र फरकने लागा ॥
भई शंखध्वनि शुभ जयकारी । आवत सहज सुगन्ध बयारी ॥
मन प्रसन्न होय वारम्बारा । न्हायो मनहुं देवसरिधारा ॥
इनको फल मैं तो यह जानू । मिलिहैं यादवकुल के भानू ॥

सहदेव—(हर्ष से) हे धर्मावतार ! प्रभात का स्वप्न सदा सच्चा होता है, आज का शुभ दिवस है जो श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन होंगे । ये भगवान् वेदों के रहस्यों को प्रकट करके ज्ञानचन्द्रिका द्वारा अवि-

ध्यान्धकार के मिटाने वाले हैं। जिनके साथ वार्त्तालाप करने से चित्त को ऐसी प्रसन्नता मिलती है मानो अमृतसागर में स्नान कर कायिक, वाचिक और मानसिक पापों को धोकर एक अनुपम स्वच्छता प्राप्त करली हो। जिनकी माधुरी मूर्त्ति का ध्यान करने में बड़े २ योगिराज अपने चंचल चित्तों को चंचरीक बनाकर अपूर्व सुख का अनुभव करते हैं। और जो गौ ब्राह्मण तथा अनाथों के पालन में असाधारण प्रेम रखते हैं।

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! तुम्हारी बुद्धि की बारम्बार बलिहारी है। चिरंजीव रहो। इस प्रकार कह आलिंगन करते हैं।

जिसके सुत दारा अनुज, हरिपद में लवलीन।
उसके आगे यम खड़ो, रहै भयातुर दीन॥

रे मन कृष्ण नाम रट लीजे॥

सत्य वचनपर दृढ़ता रखिये, साधु समागम कीजे॥ रे मन॥१॥
वेदशास्त्र को पढ़िये सुनिये, परहित में चित दीजे॥ रे मन॥२॥
हरिचरणन में ध्यान लगाकर, नित्य सुधारस पीजे॥ रे मन॥३॥
छिन छिन जीवन घटत जात है, ताहि सुफल कर लीजे॥ रे०॥४॥

सहदेव—महाराजाधिराज ! आपका उपदेश यथार्थ है। परन्तु आपके मुखारविन्द पर उदासी देखकर बारम्बार मेरा मन उसका कारण पूछना चाहता है।

युधिष्ठिर—वत्स ! तुम बड़े विचक्षण हो। मैं क्या बताऊं छत्र चँवर सहित राज्य का अपहरण, शल्य के तुल्य मर्मभेदी शत्रुओं के कटुवचन, सभा के बीच द्रौपदी का केशाकर्षण और वन में निवास

करके हरिणादिकों के साथ कालयापन इत्यादि कष्टों को मैं तिलमात्र नहीं गिनता, पर बहुत दिन हुए श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन नहीं हुए यह चिन्ता मेरे मन में रात दिन लगी रहती है। इसी कारण अमृत के समान स्वादिष्ट फलादि के भोजन पर मेरी रुचि नहीं चलती, देवांगनाओं के कोमल कण्ठों का गान और वीणा का मनोहर शब्द भी मेरे कानों को सुख नहीं देता। और तो अधिक क्या कहूं मुझे तो

नन्दन वन अमरावती, अरु सुरतरु की छाय।
इनसे भी श्रीकृष्ण के चरण अधिक सुखदाय॥

सहदेव—श्रीमहाराज! तब तो शीघ्र ही उनके दर्शन हों ऐसा उपाय बताइये।

युधिष्ठिर—वत्स! यद्यपि उनको प्रसन्न करने के अनेक उपाय हैं तथापि ब्राह्मणों को इच्छाभोजन कराकर आशीर्वाद लेने से बढ़कर तत्काल फलदायक दूसरा कोई उपाय नहीं है और महात्माओं का ऐसा कथन भी है।

तीर्थाटन तर्पण भजन, जप तप सन्ध्या स्नान।
इनसे द्विजमुख में हवन, अधिक गिनै भगवान॥

सहदेव—हे शशिवंशभूषण! प्रेमसुधा समुद्र को मथने से प्रकट हुए जो श्रीकृष्णचन्द्ररूपी सुरतरु की छाया में विश्राम करने हरिभक्त रूपी पान्थों के लिये भी धर्मकृत्य करना आवश्यक है।

युधिष्ठिर—वत्स! आगे से भूलकर भी कभी ऐसी बात मत कहना, यह तो पाखण्डियों का मत है। जैसे दक्षिण दिशा को जाता

हुआ पुरुष उत्तर दिशा को नहीं पाता अथवा बताये हुए मार्ग को छोड़ ऊट पटांग मार्ग से चलने वाला जैसे समय पर नहीं पहुंचता उसी प्रकार बिना वर्णाश्रम की रीति पाले, केवल बुगलाभगत बन बैठने वाले को भी सद्गति मिलना कठिन है।

वर्णाश्रम की रीति तजि, बिन पाये सतज्ञान।
केवल बुगला भगत नर, पावै पतन निदान॥

सहदेव—(आपही आप) अरे मैंने आज क्या प्रश्न कर लिया। वे दिन तो पीछे आवेंगे कि जिन में भक्ति स्त्री सेवा में, चतुराई परधन हरण में, आस्था नास्तिकता में, दान वेश्या की तुष्टि में, उद्योग अपने वंश की जड़ काटने में, जप परनिन्दा में, तप दूसरों की आत्मा जलाने में, मौन परहित में, उपदेश पर अनिष्ट कराने में, बुद्धिमानी स्वार्थपरायणता में। विद्वत्ता बड़ों के अपमान करने में समझेंगे, इत्यादि।

सहदेव—महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिये अब कृपा कर थोड़े से भक्तों के लक्षण तो बताइये।

युधिष्ठिर—वत्स! भक्तों के तो अनेक लक्षण हैं, पर उनमें से तुम्हारी रुचि देखकर थोड़े से कहता हूं।

काम क्रोध मद लोभ न राखै। निसदिन सत्य वचन मुख भाखै॥
कपट दंभ अरु माया छोड़ै। परधन परतियतें मुख मोड़ै॥
मात पिता गुरु सेवा धारै। वेद शास्त्र का वचन न टारै॥
देव द्विजों की निन्दा त्यागै। दुष्टसंग से दूरा भागै॥
सुख में हँसे न दुख घबरावै। रात दिवस हरिपद को ध्यावै॥
ईश अधीन विश्व सब जानै। कृपानिधान ताहि हिय ठानै॥

सुकृत कर्म जो कोइ बनि आवै। अर्पण उसके करै करावै॥
वर्णाश्रम की रीति निबाहै। ऐसो नर हरिभक्त कहावै॥

सहदेव—हे धर्मध्वज! अब मेरा सन्देह दूर हो गया। आप से निवेदन करता हूं कि धर्म के कार्य में विलम्ब करना ठीक नहीं है।

धन विद्या अर्जन समय, अमर आप को जान।
चोटी पकड़ी कालने, अस विचारि दे दान॥

युधिष्ठिर—वत्स! तुम बहुत शीघ्र जाओ और महारानी द्रौपदी को सूचित करदो।

सहदेव—जो आज्ञा। भीतर जाकर द्रौपदी सहित आता है।

(द्रौपदी का प्रवेश)

द्रौपदी—(हाथ जोड़ कर) श्रीधर्मावतार की क्या आज्ञा है?

युधिष्ठिर—प्रिये! श्रीसूर्यनारायण की कृपा से जो सिद्धिपात्र अपन को मिला है। जिससे अतिथियों का सत्कार तो आप करती ही हैं। पर आज विशेष काम यह सोचा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण-महाराज की प्रसन्नता के लिये इस वन के समस्त ऋषिमण्डल को निमंत्रित करके ब्रह्मभोज का महोत्सव करें। आप गृहलक्ष्मी हो, अतः सम्मति लेने के लिये परिश्रम दिया है।

द्रौपदी—(अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करती हुई) आर्यपुत्र! आज मेरे अहोभाग्य हैं जो ऋषिसेवा द्वारा अपने इष्टदेव की सेवा करूंगी।

युधिष्ठिर—प्रिये ! धन्य है आपकी उदारता । अब आप भोज-नादि का प्रबन्ध करें ।

द्रौपदी—जैसी महाराज की आज्ञा (विदा होती है)

युधिष्ठिर—वत्स ! हमारा तो प्रातःसन्ध्या तथा अग्निहोत्र का समय है और तुम भी शीघ्र देवकृत्य से निवृत्त हो नकुल को साथ ले ब्राह्मणों को निमंत्रण देने सिधाओ ।

सहदेव—जैसी महाराज की आज्ञा । जाता हूं (सब गये)

(स्थान-ऋषियों के आश्रम की भूमि)

(नकुल और सहदेव का प्रवेश)

नकुल—हे वीर ! देखो इन ऋषियों के आश्रम की शोभा । जहां सब वृक्ष कुसुमित और पल्लवित हो फलों के भार से भूमि पर इस भाँति झुके हैं कि जैसे विद्या पाकर पण्डितजन नम्र होते हैं । जिन के चारों ओर भँवरे घूम २ कर इस प्रकार सुगन्ध लेते हैं जैसे परिश्रमी छात्रों का वृन्द देशान्तर को जाकर नाना प्रकार की विद्या ग्रहण करते हों । अशोक चम्पकादि वृक्षों के आस पास मल्लिका मालती आदि लताओं की डालियों के मिलजाने से स्थान २ पर सुन्दर रमणीक गृह बनगये हैं जिन में ऐसी सघन छाया है कि सूर्यनारायण की किरणें भी प्रवेश नहीं पातीं ।

देखो कहीं तो बड़े २ ऋषि लोग वेदमन्त्र पढ़कर होम कर रहे हैं । जिसकी सुगन्धि से सारा वन सुगन्धमय होरहा है । कहीं कोई ऋषि उच्चस्वर से सामवेद का गान कर रहा है, कहीं कोई मुनि एकान्त

वृक्षछाया में बैठ शान्तभाव से उपनिषद् पढ़ा रहा है, कहीं ऋषिपत्नियां आश्रमवासिनी कन्याओं को श्रीवाल्मीकि रामायण पढ़ा रही हैं, कहीं कोई सौम्य बालक अपने वृद्ध माता पिताओं के चरण चाँप रहा है, कहीं वृद्ध २ ऋषिपत्नियां एकत्रित होकर हरिकीर्त्तन कर रही हैं, कहीं कोई योगी शुद्ध स्फटिक शिलापर पद्मासन जमा उस अविनाशी ज्योतिःस्वरूपका ध्यान कर ब्रह्मानंद का अखण्डसुख प्राप्त कर रहा है। जिन की लम्बी २ जटा ऐसी शोभा देती हैं।

कण्ठों में लपटी जटा, योगिन की असभात ।
मानों साँप लपेट के, बैठे शम्भु दिखात ॥
किसी ऋषीश्वर की कहीं, कोइक कपिला गाय ।
बच्छे का तन चाटती, अमृत दुग्ध पिलाय ॥
मुख लगाय शाकल्य के, भोलो मृग शिशु जाय ।
ऋषि की पीठ खुजावतो, अनुपम हर्ष दिलाय ॥
रीती मुट्ठी भींच के, कोइक ऋषि को लाल ।
मृग शिशु को बहकाय के, दौड़ावत कछु काल ॥

सहदेव—हे वीर ! वास्तव में यहां की शोभा ही नहीं, किन्तु महिमा भी अवर्णनीय है। देखो इनके तप के प्रभाव से वन में हिंसा वैर और मात्सर्य का नाम भी नहीं है। हरिण के बच्चे सिंह के बच्चों के साथ सिंही का दूध पीते हैं। हाथी हरिण और सिंह के बच्चे परस्पर खेल रहे हैं। इन सब घटनाओं को देखने से ऐसा जान पड़ता है कि सतयुग कलियुग के भय से भागकर मानों इसी तपोवन में आछिपा है।

नकुल—प्रिय बन्धो ! इतना तो बाहर का दृश्य देखा अब पास चल ऋषियों का दर्शन कर नेत्रों को आनन्द देवें।

सहदेव—प्रिय ! बहुत उत्तम बात है (दोनों आश्रम के भीतर जाते हैं)।

(स्थान महर्षि पिप्पलाद (कणाद) का आश्रम)

महर्षि पिप्पलाद आसन पर विराजमान हैं—

और आसपास हारीत, कुत्स, शौनक और शाण्डिल्य आदि ऋषि बैठे हुए वेदार्थ पर विचार कर रहे हैं। शिष्य कौण्डिन्य और मेधातिथि पंखा कर रहे हैं।

(नेपथ्य में शब्द)

पिप्पलाद—वत्स कौण्डिन्य ! जाकर देखो द्वारपर कौन है ?।

कौण्डिन्य—दौड़ कर जाता है और देख विनति करता है कि कृपानिधान ! चन्द्रवंश के भूषण अश्विनीकुमार के समान युगलमूर्त्ति नकुल सहदेव द्वार पर खड़े हैं।

पिप्पलाद—वत्स ! शीघ्र भीतर लाओ।

कौण्डिन्य—जो आज्ञा। बाहर जा नकुल और सहदेव सहित भीतर आते हैं।

(नकुल और सहदेव का प्रवेश)

नकुल और सहदेव—(हाथ जोड़कर) आश्रमाधिपति सहित सम्पूर्ण ऋषिमण्डलको ये पुरुवंशी नकुल और सहदेव सादर अभिवादन करते हैं।

ऋषिमण्डल—आयुष्मन्तावास्ताम् ।

पिप्पलाद—सत्कारपूर्वक आसन देते हैं और नकुल सहदेव निर्दिष्ट स्थान पर बैठते हैं।

नकुल—(आप ही आप) देखो इन लोगों की मूर्त्ति देखने से जाना जाता है कि ये करुणारस के प्रवाह, क्षमा और संतोष के आधार, शांतिरूपिणी लता के मूल, क्रोध-भुजंग के महामंत्र, सत्पथदर्शक और सत् स्वभाव के आश्रय हैं।

पिप्पलाद—महोदयो ! धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर सपरिवार अनामय हैं ?।

नकुल, सहदेव—ऋषिराज ! आप के आशीर्वाद से ।

पिप्पलाद—(नकुल की ओर देखकर) महाभाग ! आप अपने शुभागमन का कारण बताइये ।

नकुल—ऋषिराज ! महाराज युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक निमंत्रण दिया है कि काम्यक वनवासी समस्त ऋषि लोग आज मध्याह्नोत्तर भोजन के लिये पधार मेरे स्थान को पवित्र करें।

पिप्पलाद— हर्ष से, धन्य धर्मनंदन ! आपकी धर्म परायणता। (सब ऋषियों की ओर देखकर) हे महानुभावो ! इसका प्रबन्ध कैसे करें ।

ऋषिमण्डल—ऋषिवर ! आप किसी बात की चिन्ता न करें। हम अपने २ स्थानपर जाकर शिष्यों को भेज २ निमंत्रण दिला देंगे और सब यहां एकत्रित होकर समय पर चले चलेंगे ।

पिप्पलाद्—हे मान्यवरो ! ऐसे धर्मनिष्ठ नरेशका ब्रह्मभोज विधिवत् पूर्ण कराकर धर्म और अर्थ की सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

नकुल—ऋषिराज ! क्या आज्ञा है।

पिप्पलाद्—महाभाग ! आप राजाधिराज युधिष्ठिर से सब का संदेसा निवेदन कर दीजिये कि आप और आपका आश्रम तो सदैव पवित्र है। केवल धर्म के पालन ही के लिये जो ब्राह्मणों में इतनी श्रद्धा है यह आपका बड़प्पन है। आपकी आस्तिकता से सन्तुष्ट होकर सब ऋषि लोग सहर्ष आपके यहां भोजन प्रसाद ग्रहण करेंगे।

नकुल—ऋषिवर ! आपने बड़ी कृपा की। आज्ञा लेकर जाते हैं (शिष्य पहुंचाने जाते हैं)।

ऋषिमण्डल—ऋषिवर ! आज धर्मनन्दन के चलना है सो शीघ्रही भगवान् की स्तुति से निवटना चाहिये।

बसो मेरे नैननमें घनश्याम।
सांवरि सूरत माधुरी मूरति कोटि सूर्य समधाम ॥ १ ॥
शंख चक्र गदा पद्म विराजे कौस्तुभ लसे ललाम ॥ २ ॥
पीताम्बर की अनुपम शोभा नूपुररव अभिराम ॥ ३ ॥
दयादृष्टि करि "शिवशर्मा" की मानों प्रभो ! प्रणाम ॥ ४ ॥

(सब ऋषि लोग अपने २ स्थान को सिधाते हैं)

इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

अथ तृतीयोऽङ्कः ।

(वनस्थली में अर्जुन और भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—हे गाण्डीवधारिन्! क्या मध्याह्न होने आया ?।

अर्जुन—हे पवनकुलभूषण! होने आया। देखिये, सूर्यनारायण अपनी कमलिनीरूपिणी नायिका के कटाक्षों से तृप्त होकर आगे बढ़ रहे हैं। जिनकी किरणें वृक्षों के भीतर से आती हुई सुवर्ण के तारसी दिखाई देती हैं। और पवन दग्ध हुए शाकल्य की सुगन्ध को फैलाकर उष्णता लिये बह रहा है।

छाया अपने अंग की, देखि दुपहरी ताय ।
लेत सहारो देह को, कच्छप रूप बनाय ॥

पक्षीगण तो अपने २ घोंसले तथा सघन वृक्षों की छाया में विश्राम करते हैं। हरिण पहाड़ियों की गुफाओं के पासवाली हरीभरी भूमि में बैठ रहे हैं। हाथियों का वृन्द हथनियों के साथ सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहे हैं और दूसरी ओर ऋषिलोग ऊंचे ऊंचे हाथ करके मध्याह्न सन्ध्या का उपस्थान बोल रहे हैं।

भीमसेन—हे धनुर्धर! क्या धर्मनंदन सरोवर के तटपर अभी तक जप करते मिलेंगे ?

अर्जुन—(आकाश की ओर देखकर) हे वीररत्न! अब तो मध्याह्न कृत्य से निबट गये होंगे। चलो उनसे निवेदन करें (दोनों जाते हैं)

(स्थान सरोवर का तट)

मध्याह्न सन्ध्या से निवटकर महाराज युधिष्ठिर विराजमान हैं।

भीमसेन और अर्जुन समीप जाकर (हाथ जोड़) प्रणाम कर खड़े होते हैं।

युधिष्ठिर—(आशीष् देकर) क्या भोजन सामग्री सिद्ध है ?।

भीमसेन—हे कृष्णचरणचंचरीक ! आप क्या पूछते हैं। आज तो अन्नकूट हो रहा है।

लड्डू अरु पैड़े मानो रत्न से लखात जहां,
वड़े वड़े घेवर चाँदी सोने के पासे हैं।
फीनी औ जलेवी मालपूओं की गिनत कहां,
कचौरी पूड़ी के अव अनोखे ही रासे हैं॥
अमृतसी खीर जाकी देवता भी इच्छा करें,
ठौर ठौर कुण्ड भरे लेवत उसासे हैं।
दालकी नदी, वड़े, पकोड़े, फल फूल जहां,
शाक औ पत्ते ईख दण्ड तरु मिठासे हैं॥

युधिष्ठिर—वत्स ! तुम जाओ और काम्यकवासी तपस्वियों को शीघ्र ही वड़े सत्कार के साथ ले आओ।

भीम—जैसी महाराज की आज्ञा। जाता है (सब गये)

(स्थान ऋषियों के आश्रम की भूमि)

(भीमसेन अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—महाभाग ! देखो इस भूमि में कैसा आनंद है। रोग शोक आदि का लेश भी नहीं है।

भीमसेन—वत्स ! यह सब ऋषियों के पुण्यका प्रभाव है।

ऋषियनके तपकी बलिहारी।

वेद पुरुष को पिता गिनत हैं, गायत्री जिनकी महतारी।
ज्ञान विराग बन्धु हैं जिनके, शान्ति सुमति को समझत नारी।

छप्पनभोग कंद मूलादिक, सुरभितजल सरिता को वारी।
पर्णशाल को महल समझते, चन्द्रसूर्य जिनके रखवारी।

धनको दुःख मूलकर मानत, विद्यावन के बनत विहारी।
देव पितर गो साधु अतिथिको, प्रतिदिन पूजत हैं सुखकारी।

राग द्वेष को नाम न जाने, ब्रह्मचर्यव्रतपथ संचारी।
परउपकार हेतु तन त्यागत, जैसे पुरुष तथाविध नारी।

अर्जुन—हे वीर ! फिर क्यो नहीं लोग प्रवृत्ति मार्ग को छोड़ निवृत्ति मार्ग का पक्ष लेते।

भीमसेन—हे प्रिय !

यह तन धर्मराज पुरभाई, काम प्रवल रिपु करत चढ़ाई।
लोभ मित्र को लेकर साथा, तृष्णा वेश्या का गहि हाथा॥

मद्यमांस आगे कर योधा । तिन्हें मिलाय जिन्हें नहिं बोधा ।
ब्रह्मचर्य व्रत करके आगे । लड़े कामसे तब वह भागे ॥

होय जासु संतोष सहाई । उससे लोभ तुरत डरजाई ।
हरिपद में इच्छा जो धारै । तृष्णा के वो नर नहिं सारै ॥

साधुसंगमें निस दिन जावै । उसको मद्य नहीं भरमावै ।
दयाभक्त जो कोइ नर होवै । हिंसा तब निज घर जा सोवै ॥

अर्जुन—महाभाग ! अपनको आश्रमकी शोभा देखते और वार्त्तालाप करते बहुत विलम्ब होगया होगा ।

भीमसेन—वत्स ! आपही ने तो ढील लगाई । लो चलें, दोनों शीघ्रता दिखाते हुए चलते हैं (गये) ।

(स्थान आश्रम की भूमि)

(अनेक ऋषिमुनि सहित महर्षि पिप्पलाद) विराजमान राजा युधिष्ठिर के बुलावे की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

(भीमसेन और अर्जुन का प्रवेश)

भीमसेन और अर्जुन समग्र विप्रवृन्दों को देखकर प्रणाम करते हैं ।

ऋषिगण—हर्ष से आशीर्वाद देते हैं (शिवानि संतु)

भीमसेन—हे महानुभावो ! महाराज युधिष्ठिरने निवेदन कराया है कि यदि आप सब महाशय धर्मकृत्यों से निवृत्त होगये हों तो शीघ्र पधारिये ।

अर्जुन—हे महानुभावो ! तब तो आपने बड़ी कृपाकी, अब पधारिये ।

ऋषिगण—अच्छा चलो । सब चलते हैं (सब गये) ।

(स्थान आश्रम)

(महाराणी द्रोपदी सहित राजा युधिष्ठिर विराजमान हैं और पास पास नकुल सहदेव बैठे हैं)

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! भोजन सामग्री सिद्ध होगई । वीर भीमसेन और अर्जुन ऋषियों को बुलाने के लिये गये सो आते ही होंगे । पर ऐसा तो नहीं हुआ कि अपने कारण आज ऋषियों को भोजनादि में विलम्ब होगया हो ? ।

सहदेव—(हाथ जोड़कर) महाराज ! आप वृथा चिन्ता न करें । उधर तो सब ऋषि महोदय नियतसमय पर काम करने वाले और इधर आप क्षणभर वृथा नहीं खोने वाले ।

(नेपथ्य में शब्द)

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! द्वारपर जाकर देखो ।

सहदेव—जो आज्ञा ! बाहर जाकर अर्जुन सहित लौट कर आते हैं ।

युधिष्ठिर—प्रिय ! क्या ऋषिजन पधार गये ।

अर्जुन--(हाथ जोड़ विनय करता है) हे धर्मनन्दन! समस्त निमंत्रित ऋषि महोदय द्वारपर पधारे हुए हैं।

युधिष्ठिर--अत्यन्त हर्ष के साथ अर्घादि की सामग्री लेकर बाहर आ दर्शन करता हुआ (आप ही आप)।

कोई विष्णु-सम क्षमता-धारी, कोइ विरंचि सम ज्ञानी भारी।
कोई शंभुसो योगी राजै, कोइ गणपतिसम मुदित विराजै॥
सूर्यसमान तेज कोइ धारै, कोई काम के मद को मारै।
कोइ पावकसम तेजनिधाना, कोइ लखात ग्रहपुंज समाना॥
कोइ बालक सनकादिक जैसो, निर्विकार हो मनहर कैसो।
कोइ कन्या शारद छवि पावै, जासु दरस आनंद दिरावै॥

(प्रकाश) उन सबके सामने साष्टांग प्रणाम कर अर्घ की सामग्री द्वारा सत्कार कर आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर भीतर लेजा चरण धो चरणामृत ले सबको यथास्थान आसनों पर विराजमान कर महाराणी सहित आप और सब भाइयों ने इच्छाभोजन कराया। तत्पश्चात् चन्दन अक्षत पुष्पमालादि से सत्कार कर हाथ जोड़ नम्रता सहित प्रार्थना करने लगा कि हे ऋषिगणो! आज आपके पधारने से हम कृतकृत्य हुए। हृदयरूपी स्थान में स्थित अविद्यारूपी अन्धकार आप के तेज से नष्ट होगया। और आपके चरणोदक के मार्जन से हमको सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होगया।

ब्राह्मणवृन्द--राजाधिराज! आपको अनेक धन्यवाद हैं और आपके माता पिताओं को भी अनेक धन्यवाद हैं जिनके आप जैसे सन्तान हुए। मनुष्य थोड़ीसी प्रभुता पाकर आपे को भूल जाता है और थोड़ेसे कष्ट से खिन्न हो, ईश्वर को भी खोटा खरा कहने लग जाता है, पर आपके स्वभाव को देख बारम्बार हमारा अन्तरात्मा यही

कहता है कि आप साम्राज्यलक्ष्मी पाने के योग्य हो और जो हमारे यहां आनेसे स्थान की पवित्रता बताते हो यह तो आपका बडप्पन है। राजन्! आपके वंश में गो ब्राह्मण और बड़ों का मान परंपरा से चला आता है।

बालक पुरु यदुवंशिने, आज्ञा पितु की मान।
राज पिता को पाय कर, भोग्यो विभव महान॥
जिनके कुलमें व्याससे, ज्ञानी प्रकटे आय।
उनके कुल की स्तुति कहो, कैसे वरणी जाय॥
राज पाट सब छांड़ि के, वन में कीन्हों वास।
अस सत्य व्रत आप सम, को करि सकै उजास॥
महिमा जिनकी वेद भी, गावैं अस भगवान।
वशवर्त्ती हैं आपके, को अस तोर समान॥

युधिष्ठिर—हे मान्यवरमहोदयो! विषयजलरूपी समुद्रमें डूबते हुए क्षत्रियों के लिये ब्राह्मणों के चरणकमल का सहारा ही नौका के समान है। महाराज! जैसे लोह पारस मणि के संसर्ग से सुवर्ण बन जाता है वैसे आप जैसे सत्पुरुषों के मुखसे निकले हुए वेदादि शास्त्रों के वचनों से गृहस्थों का कल्याण होता है। विप्रवरो! आप लोगों की महिमा मैं क्या कहूं, सृष्टि के आरंभ से लेकर आजतक ब्राह्मणों ने जो काम किये हैं उनसे सब संसार सदा के लिये उनका ऋणी है। हमारे पूज्यवर मनुमहाराज क्या आज्ञा देते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः *॥
गंगामें सब तीर्थ हैं, ब्राह्मण में सब देव।
ऐसे सोच विचार के, कीजे उनकी सेव॥

---

* अर्थ—इस भरतखंड में जन्म लिये हुए ब्राह्मणों के पास से नवों ही द्वीपों के सब मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक शिक्षा को प्राप्त करें।

ऋषिमण्डल—हे धर्मनन्दन ! आपके शिष्टाचार और वचनामृतधारासे हम सब अत्यन्त सन्तुष्ट होगये हैं इसलिये प्रसन्न होकर कहते हैं कि कोई वर मांगिये।

युधिष्टिर—आनन्दाम्बुनिधिमें मग्न हो हाथजोड़ बोला, हे पूज्यवरो ! आपकी कृपा से किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है, किन्तु बहुत दिन हुए श्रीकृष्ण महाराज के दर्शन नहीं हुए, सो ऐसा वर दीजिये कि जिससे उनके दर्शन हों।

ऋषिगण—राजाधिराज ! अवश्य ही थोड़े समय में किसी निमित्तसे भगवान् के दर्शन होंगे।

युधिष्टिर—तथास्तु।

ऋषिगण—राजन् ! यद्यपि आपके साथ वार्तालाप करते २ तृप्त नहीं होते तथापि आपके भोजनका समय जान आश्रम जानेकी अनुमति मांगते हैं।

युधिष्टिर—मैं कैसे निवेदन करूं, किन्तु आज आप लोगोंको जो परिश्रम हुआ उसकी क्षमा चाहता हूं।

ऋषिगण—ऐसा आनन्ददायक परिश्रम तो आप सदैव दिया करें। सब विदा होते हैं और पांचों भाई पहुंचाने जाते हैं। (सब गये)।

(स्थान आश्रम)

(द्रौपदी सहित महाराज युधिष्टिर विराजमान हैं और आस पास सब भाई बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं)

युधिष्ठिर—(द्रौपदी की ओर मुँह करके) प्रिये ! आज आनंद-पूर्वक विप्रलोग निवटगये और सन्तुष्ट होकर उन्होंने आशीर्वाद भी दिया कि श्रीकृष्णाचन्द्रके अवश्य दर्शन होंगे। पर न तो उनके दर्शन और न कोई कुशलपत्र।

द्रौपदी—महाराज ! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, आप जैसे धर्मात्माओं को वनमें रह कर जो २ कष्ट भोगने पड़ते हैं उन को देख देख कर कभी २ तो मेरे मन के भाव कुछ के कुछ ही होजाते हैं कि इन लोगों के आशीर्वाद से क्या होता है।

युधिष्ठिर—(कानों पर हाथ धरकर) प्रिये ! आगे से कभी ऐसी बात भूलकर भी मत कहना।

द्रौपदी—नाथ ! कृपाकर मुझे कारण बताइये।

युधिष्ठिर—प्रिये ! ये ऋषिलोग रात दिन परमेश्वर का भजन स्मरण करते रहते हैं। और सदैव मनमें "शिवसंकल्प" अर्थात् प्राणी-मात्र का हित सोचा करते हैं, यहां तककि परमार्थको ही स्वार्थ सम-झते हैं, इस हेतु इन लोगों ही का आशीर्वाद फलता है।

द्रौपदी—नाथ! मैं समझगई। पर बताइये ये शाप क्यों देदेते हैं।

युधिष्ठिर—प्रिये ! मार्ग चलते कोई किसी को शाप नहीं देता जब इनको कोई अधिक कष्ट देता है तब थोड़ेसे समयतक तो क्षमा करके टालते रहते हैं, पर जब इनसे सहा नहीं जाता तब विवश हो अपनी तपस्या का क्षय विचार करुणार्द्र हो उस ईश्वर के भरोसे दुरा-शीस देते हैं सो तत्काल प्रभाव दिखाती है।

द्रौपदी—धर्मावतार! अब मैं समझ गई, मनुष्य को चाहिये कि जहां तक हो सब को सुख पहुंचावे और जिससे दूसरे के जीव को संताप हो वैसा काम कभी नहीं करे। तब निश्चय उसकी आशीस और दुराशीस काम करेगी।

(नेपथ्य में शब्द)

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव! जाकर देखो द्वार पर कौन है। सहदेव जो आज्ञा। बाहर जा श्रीकृष्णचन्द्र के दूत को देख अत्यंत हर्ष के साथ दूतका शुभागमन निवेदन करता है।

युधिष्ठिर—(अत्यंत प्रसन्नता दिखाता हुआ) वत्स! शीघ्र लाओ।

(सहदेव सहित दूत का प्रवेश)

दूत—दूरसे ही प्रणाम कर महाराज युधिष्ठिर के हाथ में पत्र देता है।

युधिष्ठिर—(हर्ष के साथ उठकर) उस पत्रको ले, मस्तक और हृदय से स्पर्श कर, आनंद के साथ बांच सब भाइयों को सुनाते हैं।

जब तक तुम सत्यव्रतधारी, तब तक होय न हार तुम्हारी।
वन में बसि ऋषि सेवा कीजे, जिससे सुफल जन्म करि लीजे॥
देश देश में सुयश तुम्हारा, फैलत लखि मन मुदित हमारा।
जहां एकता का होय वासा, तहां अवशि विपदा का नासा॥

यह विचार सब पांचों भाई, एक एक का रहो सहाई ।
जब विपदा सिर ऊपर आवें, तब धीरज धरि नहिं घबरावें ॥
उद्यम ही का लेय सहारा, उसका निश्चय बेड़ा पारा ।
जिन ने तुमको वृथा सताया, वह मेरे मन कबहुं न भाया ॥
दृढ़ धीरज मन में तुम धारो, मैं सब विधि तुमरो रखवारो ॥

सुत दारा भगिनी अनुज, अरु सब ही कुलवंत ।
तैसे प्रिय नहिं लगत हैं, जैसे प्रिय मोइ संत ॥

दूत—(हाथ जोड़) कृपानिधान ! आज्ञा दीजिये ।

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव ! हमारे तो सायंसन्ध्या का समय आता है सो जाते हैं और तुम दूत का भलीभांति सत्कार कर विदा करो ।

सहदेव—दूत को साथ लेकर जाते हैं (सब गये) ।

इति तृतीयोऽङ्कः ।

अथचतुर्थोऽङ्कः ।

(पर्णशालामें भीमसेन और नकुल का प्रवेश)

भीमसेन—वत्स नकुल ! तुम जानते ही हो कि मैं तो भूख का काचा हूं और राजा युधिष्ठिर सर्वत्र अपने धर्मकृत्यों से निवट कर विलम्ब से भोजन किया करते हैं ।

नकुल—हे पवनसुत ! आप तो ज्ञानवान हैं सो जानते ही हैं कि शास्त्रकारों ने इसीलिये व्रत उपवास आदि बताये हैं कि पेट के धन्धों में जो समय लगता है उन से जो समय बचे सो भगवान् के भजन में पूरा हो, अजीर्ण मिटे तथा दीन दुःखियों की भूख का ज्ञान हो तो राजा, धनाढ्य कि वा सद्गृहस्थों की अन्नदान में रुचि बढ़े ।

अन्नदान सम दान नहिं, तप नहिं सत्य समान ।
गायत्री सम मन्त्र नहिं, भाखत वेद पुरान ॥

भीमसेन—वत्स ! तुम्हारा विचार बहुत उत्तम है । पर अब जाकर श्रीराजा युधिष्ठिर से भोजन के लिये निवेदन करो ।

नकुल—जो आज्ञा ! बाहर जाता है (दोनों गये) ।

(आसन पर राजा युधिष्ठिर विराजमान हैं)
(नकुल का प्रवेश)

नकुल—(हाथ जोड़कर) महाराज ! वीरवर भीमसेन ने निवेदन कराया है कि दुपहर ढल गये ।

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देख कर) अच्छा वत्स तुम जाओ और पुकारो कि कोई अतिथि भूखा तो नहीं रह गया है ?।

नकुल—जो आज्ञा। बाहर जा समीपवर्ती किसी वट की शाखा पर चढ़ पुकारा कि कोई साधु, ब्राह्मण, अतिथि, अनाथ, स्त्री वा बालक विना भोजन किये रह गया हो तो अभी आ जाय। श्रीमहाराज युधिष्ठिर भोजन कर ने बैठते हैं और पीछे शीघ्र ही महारानी द्रौपदी भी बैठ जायगी (जब कोई नहीं बोला तब लौटकर) महाराज !

पक्षी तो तृप्त हो निजनीड में निवास करें,
पशुओं का झुण्ड घास खाके सुख पाते हैं।
शूकर अरु कूकर सब निश्चिंत विश्राम करें,
कीड़े मकौड़े अब बिलकी ओर जाते हैं॥
मेरे विचार से तो भूखो कोइ रह्यो है नाहिं,
आप से दयालु जहां कृपाकर जिमाते हैं।
भोजन की वेला अब तो आगई कृपानाथ,
आप किहिं हेतु अब देर क्यों लगाते हैं॥

युधिष्ठिर—वत्स ! अब शीघ्र जाओ और सब ही भाइयों को भोजनालय में लिवालाओ।

नकुल—जो महाराज की आज्ञा। दोनों जाते हैं (गये)।

(स्थान आश्रम)

(द्रौपदी सहित महाराज युधिष्ठिर बैठे हैं और सब भाई आस पास बैठे वार्तालाप कर रहे हैं)

युधिष्ठिर—प्रिये ! आप ने भोजन कर लिया ? ।

द्रौपदी—नाथ ! जब आप सब (वैश्वदेव आदि से निवृत्त हो) महाभागों ने भोजन कर लिया तब मैंने भी देवताओं को मना भोजन कर वर्त्तन मँजा कुँजा पाकशाला को लिपा पुता अब निश्चित होगई ।

युधिष्ठिर—भाइयो ! आज का दिन भी बड़ा अच्छा रहा सो अतिथि सेवासे निवट कर कृतार्थ हुए ।

(नेपथ्य में)

कृतार्थ कैसे हुए अभी तो शिष्यों सहित मैं व्रती विना भोजन किया हुआ खड़ा हूं ।

युधिष्ठिर—(पछताता हुआ) वत्स नकुल ! तब तो बड़ा अनर्थ हुआ । द्वार से स्पष्ट सुनाई देता है कि मैं भूखा हूं ।

राजा मुझको जानकर, अतिथि खड़ो है द्वार ।
भोजनकर निवटे हमें, हुई न थोड़ी वार ॥
हुई न थोड़ी वार, दिवस अब भी बहुतेरो ।
गंगा तटपर थान, निकट ऋषियन को डेरो ॥
ऐसी विपदा माहिं कौन मम राखै लाजा ।
नाम कलंकित होय अवशि मेरो अब राजा ॥

सो तुम अब जाकर द्वारपर देखो कौन है ? ।

नकुल—द्वारपर जाकर (दस सहस्र ऋषियों सहित दुर्वासा ऋषि को देख) घबड़ाया हुआ आकर निवेदन करता है कि महाराज ! क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता और कहे विन रहा भी नहीं जाता, कालाग्नि के समान तपाने वाले शिष्यों सहित दुर्वासा ।

युधिष्ठिर—(डरता हुआ) हाय ! आज कैसी बनी । भैया सहदेव तुम जाओ और अर्घ की सामग्री शीघ्र लाओ ।

सहदेव—जो आज्ञा । दौड़कर अर्घ की सामग्री लाकर भेट करते हैं ।

युधिष्ठिर—कुछ विचार करते हुए धीमे चलते हैं और जब ऋषि का स्मरण आता है तब उतावले २ पांव धरते हैं ।

डुपटा नीचे गिर रह्यो, नंगे पग नरपाल ।
ऋषि के सम्मुख जात हैं, चिन्तातुर तत्काल ॥

पास जा हाथ जोड़ शिर नवाते हुए बोले कि हे अत्रिकुलप्रदीप ! यह पुरुवंशी युधिष्ठिर आपको सादर अभिवादन करता है ।

दुर्वासा—(क्रोध में आकर) क्या मेरे साथ ही चतुराई चलता है ? पौरव ऐसे ही होते होंगे ? देख ! मैं शिष्यों सहित बहुत समय से द्वारपर खड़ा हूं । मेरी किसी ने भी कुछ सुध नहीं ली । क्या मेरे क्रोध को तू नहीं जानता (भौं को चढ़ाता हुआ) ।

चाहूं तो ग्रहगण सहित, रवि को लेऊँ उतार ।
अरु हिमगिरि को गगन में, अधर धरूं इहिबार ॥

अरे पुरुवंश को तू वृथा ही अभिमान धरै,
तेरे कुल बीच तोसम भयो कौन मानी है ।
जिसने उन्मत्त होकर अतिथिन को मान मारि,
रमणी सँग रमणकर आयुस वितानी है ॥

राजा तो वही है जो सर्वदा सचेत रहै,
प्रजा पालि पीछे लेत आप अन्न पानी है।
चखाऊंगो तोहि तेरी नीचता को अभी स्वाद,
जिससे विप्रवंश की पताका फहरानी है॥

युधिष्ठिर—(आप ही आप) मुझे विचारते २ अवश्य विलम्ब होगया होगा।

ज्ञानहीन भी अतिथि का, चूकै नाहिं सत्कार।
जो काटै उसकी हरै, ताप वृक्ष की डार॥

हाय! राजधानी छोड़ वन में आये तो यहां भी ऋषियों की आंच, अथवा दोष किस को दें यह सब भाग्य ही की महिमा है।

पूर्ण चन्द्र के उदय से, इक चकवे को त्याग।
सकल विश्व होवे सुखी, अवशि बड़ो है भाग॥

(फिर सोच कर) बड़ों का कथन है कि रूठे को मनाना और फाटे को सीना, सो जैसे तैसे इनको मनाऊं (प्रकट) महाराज! मैं वारम्वार प्रार्थना करता हूं कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

दुर्वासा—(क्रोध सहित भौं चढ़ाते हुए) अरे क्षुद्र क्षत्रिय! क्या तू मुझे ऐसे कपट प्रणामों से फुसलाना चाहता है! सुन।

मीठा बोले जगत से, लम्बी करै प्रणाम।
हँसकर जो किंकर बने, वह मन में अति वाम॥

सहदेव—(आप ही आप) देखो तपस्वियों का बलात्कार, जो धर्मनन्दन को भी झिड़कते हैं।

युधिष्ठिर—महाराज ! आप ब्राह्मण वंश के भूषण और तपस्या के सागर हैं । अविद्यान्धकार में ठोकरें खाते हुओं को मार्ग बताकर कल्याण करने वाले हैं । नाथ ! मैं अज्ञान हूं सो मेरे अपराध को क्षमा कीजिये ।

यज्ञ वस्तु को हरण शिशु, कूकर करै विगार ।
तोभी ऋषिजन नहिं खिजत, वाको अज्ञ विचार ॥

दुर्वासा—अरे तू कालाग्नि से भी नहीं डरता जो वारवार मुझे समझाता और छेड़ता है ।

युधिष्ठिर—हाथ जोड़ खड़ा हुआ (आपही आप) हाय ! इस चंद्रवंश में ब्राह्मणों का तिरस्कार करने वाला कोई नहीं हुआ । सब लोग कहेंगे कि राजा युधिष्ठिर ही एक ऐसा हुआ कि जिसने ब्राह्मणों के शापसे कुलका सत्यानाश किया (प्रकट) ।

चिन्ताके सागर विषें, पड़े हुए को नाथ ।
दया दृष्टि से खींचिये, पकड़ दास को हाथ ॥

(शिष्यों को हटाता हुआ शान्तिवर्मा आता है)

शान्तिवर्मा—हे जगद्गुरो ! तपस्यासागर ! यह आपका छात्र मौद्गलय शांतिवर्मा साष्टांग प्रणाम निवेदन करता है ।

दुर्वासा—(कुछ शान्त मुद्रा से) आयुष्मान् भव ।

शान्तिवर्मा—(आपही आप तथास्तु) (प्रकट) महाराज एक विनती है ।

दुर्वासा—सौम्य ! कहो ।

शान्तिवर्मा—नम्रतापूर्वक विनति करता है। हे गुरुदेव ! यह राजा युधिष्ठिर साक्षात् धर्म का अवतार है। इसका तिल मात्र भी अपराध न समझ कर इसका सत्कार स्वीकार कीजिये ।

प्रेम सहित जो जोड़ै हाथा । पुनि नवाय चरणों में माथा ।
काम क्रोध मद मोह न राखै। निसदिन सत्य वचन मुख भाखै।
परधन परनारी का त्यागी । ईश चरण का अति अनुरागी ।
धर्म सनातन का रखवारा । चंद्रवंश का है उजियारा ।
देव तुल्य जिसके सब भाई। तोभी नहिं यह चहत लड़ाई ।
द्रुपदसुता सम जिसकी रानी। अतिथिन का पूरा सम्मानी ।
न्यायपक्ष तें वनका वासी। रहि गृहस्थ यह है संन्यासी ।
कृष्णचरण का जाहि सहारा । तिस से नरपति चरित उदारा ।

दुर्वासा—(आपही आप) मैं राजा का स्वभाव तथा हरि-भक्तों का प्रभाव भलीभाँति जानता हूं पर क्या करूं, वाणी से बँधा यहां आया हूं ।

अम्बरीष हरिभक्तको, करके मैं अपमान ।
चक्रसुदर्शन तेजसे, पायो कष्ट महान ॥
तबसे यह अनुभवभयो, हरिभक्तन के साथ ।
रहत सदा रघुपति तथा, श्रीयदुपति के नाथ ॥

(प्रकट) अच्छा तुम्हारे कहने से मैं इसका सत्कार स्वीकार करूंगा ।

शान्तिवर्मा—महाराज! आपने बड़ी कृपा की (आप ही आप) एक समय श्रीमहादेवजी ने श्रीमुख से उपदेश दिया था कि भगवान का वचन टल जाय, पर भक्तों का वचन नहीं टलता।

सहदेव—(आप ही आप) बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे महाक्रोधी का शिष्य होकर भी ऐसा शान्त (फिर सोच विचार कर) कहीं तो कारण और कार्य का परिणाम विचित्र ही दिखाई देता है।

मेघ बूंद पड़ि सीपमें मोती होत अनूप।
वही सर्प मुखमें गिरी विषको धारत रूप॥

युधिष्ठिर—(आप ही आप) मेरे भागका श्रीकृष्णचन्द्रसम कृपालु बनकर यह मुनि-शिष्य सूखते घास पर अमृतवर्षा करने वाला नवपयोद कैसा आगया।

दुर्वासा—शान्तिवर्मन्! यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारे कथन के समान अतिथियों का पूर्ण सत्कार करने वाले हैं तो इन्हें तुम सचेत कर दो कि शिष्यवर्ग सहित हमारे लिये भोजन का प्रबन्ध करें। हम मध्याह्नसन्ध्या करने को जाते हैं।

शान्तिवर्मा—जैसी गुरुदेव की आज्ञा (राजा को संक्षेप देता है)।

युधिष्ठिर—(आपही आप) आज पूर्वजों के पुण्य से इस प्रलयाग्नि के उग्रशाप से तो अभी अच्छे बचे। और जो अवधि मिली है जिसमें कोई न कोई उपाय सूझ जायगा (प्रकट) हे कृपासिन्धो! द्विजकुलचक्चूडामणे! अत्रिहृदयचंदन! आपकी सेवा में सहदेव को भेजता हूं सो वह जाकर एक विमल जलाशय बता देगा।

विविध फूल जिसमें खिले, भँवर करत गुंजार।
पथिकन को सुख देत है, शुचि जल जासु निहार॥

दुर्वासा—राजन्! अच्छा तुम्हारी इच्छा।

युधिष्ठिर—वत्स सहदेव! तुम जाओ और ऋषियों को जलाशय बता आओ।

सहदेव—जैसी महाराज की आज्ञा। ऋषि के आगे होता है और ऋषि शिष्यों सहित पधारते हैं।

युधिष्ठिर—(सबकी ओर देखता हुआ)।

देव की गति नहिं जानी जावै।
नृपको रंक रंकको नरपति, इकछिन माहिं बनावै।
इकके बीस बीस के उनइस, प्रकट सबहिं दिखलावै।
बुध तें अबुध अबुधतें बुध करि, सबके गर्व गलावै।
सुखतें दुख अरु दुखतें सुखकरि, नाना रंग रचावै।

(धीरे २ सब जाते हैं)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

अथ पंचमोऽङ्कः ।

(स्थान भोजनशाला)

(द्रौपदी सहित राजा युधिष्ठिर उदास बैठे हैं और भीमसेनादि चारों भाई भी उदास बैठे हैं)

युधिष्ठिर—हे मेरे प्रिय बन्धुओ! विषपान, लाक्षागृह से निकास आदि अनेक विपत्तिरूपिणी नदियों में बहते हुए और ईश्वरकृपासे उनको तिरते तिराते अन्त में आज कालाग्नि के समान क्रोधी दुर्वासाके शापरूपी सागर में डूबनेका समय आगया है। हाय! हमारे भाग्य! कि इधर महाराणी द्रौपदी भोजन से निश्चिन्त होकर आराम करने लगीं कि उधर शिष्यमण्डली सहित दुर्वासा जैसे महर्षि का आगमन हुआ। मैं क्या करूं कुछ उपाय नहीं सूझता। केवल नदी में डूबते हुए के लिये तीर पर उगे हुए तृण के सहारे के समान बचनेके लिये थोड़ी सी अवधि मिली है। सो इस से क्या हो, ओस की बूंदों से क्या प्यास बुझ सकती है?।

भीमसेन—(विनय से हाथ जोड़) महाराज! आज आपको यह क्या होगया। आप तो धैर्यसिन्धु हैं। सदैव हम जैसों को विकलता में धीरज देकर थामते हैं। नाथ! जब नाव का खेवटिया ही थक कर बैठजाय तो फिर कहिये नाव कैसे चलेगी।

युधिष्ठिर—हे पवननन्दन! तुम्हारा कहना बहुत ठीक है पर यह तो तुम जानते ही हो कि वैद्य दूसरों की चिकित्सा करता है पर जब वह स्वयं व्याधि से ग्रस्त होजाय तब अपनी चिकित्सा आप कैसे करे?।

अर्जुन—(हाथ जोड़ कर) हे शशिवंशभूषण ! मेरी अल्पबुद्धि में तो यह आता है कि ऐसी विपत्ति को टालने में शस्त्रविद्या जानने वालों की गति नहीं, किन्तु शास्त्रविद्या जानने वालों की आवश्यकता है। सो समस्त विद्याओं में पारंगत पुरोहित श्रीधौम्यजी महाराज को बुलाइये। इस विषय में बड़ों का कथन है कि संदेह का फंदा विद्वज्जनों के उपदेश बिना नहीं कटता।

विद्या की महिमा भारी, मैं कैसे करूं बखानजी ॥
विद्या जग में मान करावैं, विद्याही सुरलोक दिरावैं।
विद्याही सब कष्ट मिटाकर, करैं आत्मकल्याणजी ॥ वि० ॥ १ ॥

विद्याही जप तप करवावें, विद्यादेव दरस दिलवावें।
विद्या कामधेनु है जगमें, जानैं वृद्ध जवानजी ॥ वि० ॥ २ ॥

विद्याही धन धान दिलावैं, विद्या राजसभा पहुंचावैं।
विद्याही रिपुमद चूरणकर, विजय दिलाय महानजी ॥ वि०॥३॥

विद्याही ते रमणी पावै, विद्याही सुत जन्म करावै।
विद्या कीरति देत अंखिडत, अबतक शशि अरु भानजी ॥ वि०॥४॥

विद्या का जो लेय सहारा, उसका निश्चय होय उबारा।
कहै त्रिपाठी सुनो महाशय, यह प्रत्यक्ष प्रमाणजी ॥ वि० ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर—वत्स नकुल ! तुम जाओ और सादर पुरोहित धौम्य ऋषिराज को लिवालाओ।

नकुल—जैसी महाराज की आज्ञा (बाहर जाता है)।

(स्थान धौम्य ऋषि का आश्रम)

ऋषि और ऋषिपत्नी आसन पर विराजमान हरिभक्ति-सम्बन्धी वार्तालाप कररहे हैं और शिवशर्मा और रामशर्मा दो छात्र खड़े २ सुनरहे हैं।

ऋषिपत्नी—हे स्वामिन्! भक्ति क्या वस्तु है?।

धौम्य—प्रिये! अजर अमर अविनाशी सर्वशक्तिमान् जो परमेश्वर निर्गुण और सगुण दो नामों से विख्यात हैं। प्रलय के समय में सबको समेट कर जब वह योगनिद्रा में रहता है तब निर्गुण और सृष्टि को विद्यमान अवस्था में उत्पत्ति स्थिति आदि नियमानुसार प्रबन्ध करके सगुण कहलाता है। वह सत्व रज और तमोगुणके भेदसे विष्णु, ब्रह्मा और महेश का (पुरुषरूप से) तथा लक्ष्मी, सावित्री और भवानी का (प्रकृतिरूप से) जीवों का ध्येय पदार्थ है। उसको "यथा देहे तथा देवे" अर्थात् जिन २ कारणों से आप सुख पाता है वैसा ही भाव परमेश्वर में लाकर तन, मन और धन का समर्पण करते हुए जो ईश्वर की सेवा कीजाती है उसका नाम भक्ति है।

ऋषिपत्नी—नाथ! आपका कथन यथार्थ है। पर लोग श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति क्यों करते हैं?।

धौम्य—प्रिये! वही परमेश्वर जैसे सूर्य्यादि में प्रविष्ट होकर प्रकाश करता, चंद्रमा द्वारा सुख पहुंचाता, जल और वायु द्वारा जिवाता है वैसे ही संसार को मर्यादा बताने, साधुओं का पालन और असाधुओं के ताड़न के लिये अवतार धारण कर धर्म की रक्षा करता है।

ऋषिपत्नी—नाथ ! अब मैं समझगई । आपकी कृपा से अवश्यमेव शुद्धभाव से उस परमेश्वर की भक्ति करनी चाहिये ।

(नेपथ्य में शब्द)

धौम्य—शिवशर्मन् ! जाकर देखो द्वार पर कौन है ।

शिवशर्मा—जो आज्ञा । बाहर जा नकुल सहित प्रवेश करते हैं ।

(नकुल का प्रवेश)

नकुल—हे गुरुदेव ! यह पुरुवंशी नकुल सादर अभिवादन करता हूं ।

धौम्य—वत्स ! आयुष्मान् भव । शिवानिसंतु ।

नकुल—(आप ही आप) तथास्तु । (प्रकट) महाराज युधिष्ठिर आपका दर्शन करना चाहते हैं ।

धौम्य—सौम्य ! अभी चलते हैं । पर यह तो बताओ कि तुम्हारे मुख पर उदासी क्यों है ? ।

नकुल—महाराज ! मैं क्या निवेदन करूं । धर्मनन्दन से मिलने से सब बात विदित होजायगी । दोनों शीघ्रता से चलते हैं (सब गये) ।

(स्थान पाण्डवों का आश्रम)

(द्रौपदी सहित राजा युधिष्ठिर चिन्तातुर बैठे हैं और आसपास भीमसेनादि भाई बैठे हैं)

(नकुल सहित पुरोहित श्रीधौम्यजी का प्रवेश)

युधिष्ठिर—दूर से देखते ही खड़े हो प्रणाम कर अर्घ की सामग्री भेट करते हैं।

धौम्य—शिवानि संतु।

युधिष्ठिर—महाराज! आसन पर विराजिये।

धौम्य—धर्मावतार! मैं बैठता हूं। आप भी विराजिये (सब बैठते हैं)।

धौम्य—राजन्! हमको क्यों स्मरण किया है?।

युधिष्ठिर—(घटकता २) महाराज! हम सब भोजन कर चुके तब महाराणी द्रौपदी ने भी भोजन कर विश्राम किया। इतने ही में शिष्यमण्डलीसहित भोजन करने को दुर्वासा ऋषि आपहुंचे। अब इनको क्या खिलाऊं।

धौम्य—(आपही आप) चिन्तातुर होकर (प्रकट) राजन्! चिन्ता मत करो। परमेश्वर मंगल करेगा, मैं तो अभी जाकर श्रीकृष्णचन्द्र को बुलाने के लिये जपानुष्ठान करूंगा सो वे आकर तुम्हारा कष्ट मिटावेंगे।

जपसे ब्रह्मादिक सब देवा। मानलेत हैं अपनी सेवा।
जपसे सकल सिद्धियां आवें। जपसे पाप सभी कटिजावें।
जपसे निर्मल होवें काया। जपसे सहज मिले धनमाया॥
जपसे विद्या होय प्रकाशा। जपसे होय शत्रुका नाशा।
जपसे सुत अरु दारा पावै। जपही सारा कष्ट मिटावै।

मैं तो हरि सुमरण करूं, तुम सब करो पुकार ।
तब करुणानिधि आयके, लेंगे तुम्हें उबार ॥
माता के थन में दियो, दुग्ध प्रथम करि दाय ।
वो नहिं मूतो नहिं मरयो, श्रुति स्मृति अस गाय ॥

सो शीघ्र इन्हें आज्ञा दीजिये ।

युधिष्ठिर—प्रभो ! आप शीघ्र उपाय कीजिये (साथ २ पहुंचाने जाते हैं) ।

युधिष्ठिर—पीछे लौटकर (आपही आप) ।

बोल्यो तपसी द्वार पै, घर में शाकन पात ।
कृष्ण सहायक दूर हैं, कस होगी कुशलात ॥

(प्रकट) हे मेरे प्रियभाइयो ! इस संसार में श्रीकृष्णचन्द्र को छोड़कर कोई दूसरा अपना सहायक नहीं है । इसलिये तन्मय होकर उसी को पुकारिये वही सुनकर अपना कष्ट दूर करेगा । (प्रार्थना करता है)।

श्रीकृष्णचन्द्र ! सुन लीज्यो विनय हमारी ।
तुम बिन नहिं कोई दीनों का हितकारी ॥ टेर ॥

गज की विनती सुन कमला का कर त्यागा ।
विनतासुत को भी भूलि पयादा भागा ॥
जब देखा गज को दुष्टग्राह से दागा ।
तब दे चक्करकी किया तुरत ही आगा ॥
ऐसी तुव महिमा जानै सब संसारी ॥ तुम बि० ॥

भीमसेन—दुर्योधन खलने विपयुत अन्न खिलाया ।
सुधबुध कुछ लखके विपयुत नीर पिलाया ॥
पुनि बाँध जकड़ के जल के बीच डलाया ।
घर आ कुंती माता का जीव जलाया ॥
कहो मेरी किसने की थी वहां जिवारी ॥ तुम० ॥

अर्जुन—जब द्रुपदसुता का रचा स्वयम्वर भारी ।
तब सब देशों के जुड़े वहां नरनारी ॥
मच्छीवेधन का कैसा प्रण था भारी ।
जिसमें सब थाके बड़े २ धनुधारी ॥
उस समय दिलाई किसने द्रुपददुलारी ॥ तुम० ॥

नकुल—लाक्षागृह जब कपटी नृप ने बनवाया ।
जिसका नहिं किसने भेद यथारथ पाया ॥
श्रीविदुरसरिस ज्ञाता ने कुछ दरशाया ।
उस समय भागकर सबने जीव बचाया ॥
अस जटिल जाल में जिसविध विपद विडारी ॥ तुम० ॥

सहदेव—जब जब दीनों पर विपद पड़ै तब आवो ।
आकर के उनके झट पट कष्ट मिटाओ ॥
इस कारण ही तो सबके मन तुम भावो ।
फिर हम से इतनी क्योंकर स्तुति करवावो ॥
जो प्रण पालो तो लाज रखो बनवारी ॥ तुम० ॥

द्रौपदी—दुःशासन खल जब चीर उतारन आया ।
तब सभ्यवृन्द ने मन में कस दुखपाया ॥

पांचों पति होते एक न मुझे बचाया ।
मेरे मन की तो मैं जानूं यदुराया ॥
राखि विरुद रावरो जैसे चीर प्रसारी ॥ तुम० ॥
करि दया दिया है पात्र सूर्य ने देवा ।
जिससे अतिथिन की बनि आवै कछु सेवा ॥
हतभाग्य आज दुर्वासा आये जेंवा ।
मेरे घर में नहिं शाक कहां पुनि मेवा ॥
तुम अन्तर्यामी विपद जानलो सारी ॥ तुम० ॥
जो विनती सुनकर कुछ भी ढील लगाई ।
तो तुमको प्रभुजी लाखों राम दुहाई ॥
ज्यों ज्यों दुर्वासा भोजन बेला आई ।
त्यों त्यों हम सब की छाती फटती जाई ॥
अब नहिं आये तो पत जावेगी थारी ॥ तुम० ॥

ऐसे पुकारती हुई अचेत हो पृथिवी पर गिरती है और सब मिल सम्हालते हैं (विश्राम स्थान में लेजाते हैं)।

(स्थान द्वारकापुरी का राजमहल)

श्रीकृष्णचन्द्र के लिये दुपहरी का थाल आया है और श्रीरुक्मिणीजी सेवा में बैठी हुई जिमाने को प्रस्तुत हैं सुलोचना और सुकेशी पंखा कररही हैं)।

रुक्मिणी—कृपानाथ! इतने समय तक तो आप हँसते २ बातें कररहे थे। अब एक साथ ही उदास कैसे होगये ?।

श्रीकृष्ण—प्रिये! अभी मेरे भक्तों में बड़ा भारी संकट आपड़ा है।

रुक्मिणी—ऐसे कौन से आप के भक्त हैं ?।

श्रीकृष्ण—पाण्डव और उन की महारानी द्रौपदी।

रुक्मिणी—(चकित होकर) प्रभो! उनमें कौनसा संकट आया ?।

श्रीकृष्ण—राजा दुर्योधन की वाणी से बँधकर दुर्वासा ऋषि महारानी द्रौपदी के भोजन के उपरान्त शिष्यों सहित आकर भोजन मांगते हैं। ओ हो! यदि मैं इसी समय वहां नहीं पहुंचूंगा तो क्या का क्याही होजायगा। ऐसे कहते हुए श्रीरुक्मिणीजी के प्रत्युत्तर को विना सुने ही वहां से विदा होकर अन्तर्ध्यान होते हैं।

(स्थान वनस्थली में पाण्डवों के आश्रम का द्वार)

श्रीकृष्णचन्द्र द्वारपर आकर पुकारते हैं। कृष्ण हूं! कृष्ण हूं!! कृष्ण हूं!!!

युधिष्ठिर—(चकित होकर) वत्स सहदेव! नवीन मेघ के समान गम्भीर स्वर से स्पष्ट शब्द सुनाई देता है कि कृष्ण हूं! कृष्ण हूं!! सो तुम जाकर द्वारपर देखो।

सहदेव—महाराज की जैसी आज्ञा। दौड़कर द्वारपर जा श्रीकृष्णचन्द्र को देख शीघ्र ही पीछा लौटकर उत्तर देता है कि भक्त-वत्सल द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र ही पधारे हैं।

युधिष्ठिर—एक साथ खड़ा हो सबको साथ ले, कहां हैं कहां हैं ? इस प्रकार कहते हुए इधर से द्वारपर आते हैं उधर श्रीभगवान् कृष्ण-चन्द्र सम्मुख मिलते हैं।

मुख पै श्रम बूँदें लसैं, टूट रही फुलमाल।
हांफत नंगे पाँव प्रभु, आकरि किये निहाल॥

देखते ही सब उमंगसे भरे प्रणामपूर्वक भगवान से मिल, भीतर लेजा, उच्चासन पर विराजमान कर, द्रौपदी सहित सब मिल गंधादि पूजोपचारों से अर्चन कर हाथ जोड़ प्रार्थना कर बोले कि नाथ! आप भले पधारे (सब यथास्थान पर बैठते हैं)।

श्रीकृष्णचन्द्र—हे धर्मनन्दन! आज आप सब तन छीन मन मलीन क्यों हैं? अथवा हम क्या पूछें।

पिता पाण्डु नरेश तो सुरधाम पहिले ही गये।
पुनि राजलक्ष्मी दुष्ट बांधव कपटतें लेते भये।
करि नारि की दुर्गति सभा में वास बनका दे दिया।
मनकी व्यथा का पार क्या यह कहत सब मेरा हिया॥

युधिष्ठिर—हे यदुकुल-नलिन-दिनेश! ऐसे मत कहिये। जिन की आप के चरणारविन्दों में भक्ति है उनके लिये राजलक्ष्मी तो काल सर्पिणी है, धन बन्धन, पुत्र कलत्र रेणु, मान शाप, गौरव रौरव, भूषण भार, मुक्ति शुक्तिसी जान पड़ती है। पर अभी तो नाथ! दुर्वासा ऋषि के शापरूपी ताप से बचाइये।

श्रीकृष्णचन्द्र—दुर्वासा ऋषि कहां हैं?।

युधिष्ठिर—महाराज! वे सरोवर पर स्नान सन्ध्या करने को गये हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र—धर्मपुत्र ! तो क्या चिन्ता है ?।

युधिष्ठिर—महाराज ! उनको निमंत्रण तो देदिया। पर पास भोजन सामग्री नहीं।

श्रीकृष्णचन्द्र—वाह २ तो फिर निमंत्रण क्यों दिया ?।

युधिष्ठिर—कृपानाथ ! आप तो जानते ही हैं कि गृहस्थ का धर्म कितना विकट है ?।

जिस के द्वारे से अतिथि, टूटी आशा जाय।
तो वह लेवे पुण्य अरु, देवे अघ समुदाय॥

श्रीकृष्णचन्द्र—यह शास्त्रकारों का कथन बहुत ठीक है इसी के अनुसार अपना भोजन उन्हें खिला दो।

युधिष्ठिर—महाराज ! हम सब तो जीम चुके।

श्रीकृष्णचन्द्र—राजन् ! यह कैसा गृहस्थ धर्म, जो अतिथि तो भूखा बैठा रहे और आप चैन उड़ावे।

युधिष्ठिर—कृपानिधान ! अतिथियों का सत्कार कर एक हेला पड़ाकर हम पांचों भाइयों ने भोजन किया और पीछे महारानी द्रौपदी ने।

श्रीकृष्णचन्द्र—धर्मपुत्र ! तब तो उत्तम बात। (फिर द्रौपदी की ओर देखकर) द्रुपदसुते ! आज हम भी बड़ी दूर से अतिथि बनकर आये हैं, कड़ी भूख लगी है, कुछ लाकर खिलाओ।

द्रौपदी—नीचा मुँह करके (आपही आप) मैं क्या कहूं और क्या करूं। शिष्यों सहित दुर्वासा ऋषि की तो अभी कुछ विध बनी ही नहीं। अब साक्षात् द्वारकाधीश भी भोजन मांगते हैं और मेरे घर में तिल मात्र सामग्री नहीं।

निश्चय मेरो जन्म ही दुःख भोगने हेत।
आयो इस संसार में मन मेरो कह देत॥

श्रीकृष्णचन्द्र—सहदेव की ओर देखकर वत्स! तुम जाओ और जो कुछ मिले सो लाओ।

सहदेव—(आपही आप) आज कैसी बनी। ये अपार संपदा के स्वामी हमसे भोजन मांगते हैं और हम में से कोई भी इनकी सेवा नहीं कर सकता, ऐसे नाना प्रकार के विचार करता हुआ भीतर जा रिक्त हस्त आ (प्रकट) हे कृपासागर! मैंने घर में जाकर देख लिया कुछ न कहलाइये। यह पवित्र पात्र धोया धाया रक्खा है।

श्रीकृष्णचन्द्र—(हँसकर) अर्जुन की ओर देखते हुए। मित्र तुम जाओ। हम को तो सहदेव और द्रौपदी का सारपासा एकसा दिखाई देता है।

अर्जुन—महाराज! आपको भरोसा नहीं आया तो मैं लाकर पात्र यहां रखता हूं (जाकर पात्र ला सम्मुख धरता है)।

श्रीकृष्ण—पात्र को हाथ में ले और चारों ओर से उसको देख भाल उसमें से कुछ शाक के पत्ते का टुकड़ा पा अर्जुन की ओर देख

हँसकर बोले कि हे धनुर्धर ! मैं समझ गया महारानी ने कल के लिये यह प्रसादी छुपा रक्खी है, देखो यह क्या है ? ।

अर्जुन—महाराज ! आपकी बात आपही जानें ।

श्रीकृष्ण—वत्स सहदेव ! थोड़ासा जल तो लाओ ।

सहदेव—महाराज की जैसी आज्ञा । जलपात्र लाकर श्रीभगवान के सामने उपस्थित होता है ।

श्रीकृष्ण—(द्रौपदी की ओर देखते हुए) जलपात्र हाथ में ले उस शाक की कणिका को मुख में धर उसके स्वाद की बड़ाई करते हैं, मुझे तो एक अपूर्व ही आनंद इसमें आता है ।

छप्पन भोग छतीसही व्यंजन तो इक ओर ।
अमृतसम मन को हरे इधर शाक कण मोर ॥
जैसी इस कण से हुई मेरी तृप्ति उदार ।
वैसी सगरे विश्वकी होत न लागे बार ॥

शाककणिका ले ऊपर से जल पान करते हैं ।

युधिष्ठिर—महाराज ! धन्य आपकी दयालुता ।

लोकपाल भी देखके जासु विभव चकराय ।
वे यदुपति महिमा करै शाक पात को पाय ॥

(स्थान जलाशय)

(शिष्यों सहित दुर्वासा ऋषि ऊंचे हाथ किये हुए मध्याह्न सन्ध्या का उपस्थान कररहे हैं)

दुर्वासा—(एक साथ चकित होकर) वत्स शान्तिवर्मन् ! वत्स-शान्तिवर्मन् ! यह क्या होगया । मुझे वारंवार विना ही भोजन किये इतनी डकारें क्यों आती हैं।

न्योता माना जानकर, भोजन पै रुचि नाहिं ।
द्रुपदसुता अरु पंडुसुत, क्या कहि हैं मन माहिं ॥

शान्तिवर्मा—गुरुदेव ! मैं क्या बताऊं मेरे पेटमें तो आफरा-सा चढ़गया है ।

सत्यव्रत—(धीरे से) मित्र शान्तिवर्मन् ! क्या कहूं आज तो राजद्वार में खीर, मोदक उड़ाने की सोचते थे। पर हमारी तो यह दशा होगई ।

ऊर्द्ध गच्छन्ति डकारा अधो गच्छन्ति वायवः ॥

अहिंसानन्द—(आप ही आप) अनेक कष्ट पाकर तो गुरु-कुल में रहकर विद्याभ्यास करते हैं। घर से यहां रहने में इतना स्वार्थ विशेष है कि ऋषिजी के प्रभाव से नित्य नये पदार्थ उड़ाते हैं। पर आज की देखते तो सब भरपाये । जीवेंगे तो बहुत पढ़ेंगे (प्रकट) गुरु-देव ! आप ने राजा का न्योता माना है, तोडूराम समझ पहिले मुझे ही भेजेंगे, पर मेरी माता के तो मैं एक ही हूं सो मुझे तो सीधा पगडंडी का मार्ग बता दीजिये ।

दुर्वासा—वत्स सत्यव्रत ! तुम प्रक्रियाकौमुदी में कुशल हो। बताओ अब क्या करना चाहिये।

सत्यव्रत—(आप ही आप) भेट पूजा के समय तो गुरुजी शान्तिवर्मा को पुकारैं और झगड़े टंटों में मुझे (प्रकट) गुरुदेव ! मेरी तो यह सम्मति है कि गायत्री द्वारा झटपट अर्घ बर्घ दे जबतक कोई बुलावा नहीं आय जिस के पहिले ही चंपत बनना चाहिये।

दुर्वासा—ध्यानकर (आप ही आप) अरे ! यह लीला तो उसी काली कम्बलवाले बाबा की है (प्रकट) वत्स ! तुमने अच्छा उपाय बताया। पर स्याऊं के मुंह आगे कौन ठहरेगा (सब शिष्य चुप साधते हैं)

सत्यव्रत—गुरुदेव ! कृपाकर थोड़ासा इन शिष्यों की ओर भी देखिये जो मोदक खंडन में आगे और विकट काम में पीछे।

दुर्वासा—वत्स ! तुम ही हमारी ओर से कर लेना। और कह देना कि मुझे आप को सन्देसा कहने के लिये ठहरा दिया है।

सत्यव्रत—गुरुदेव ! जैसी आज्ञा (सब जाते हैं)।

(बीच के उच्चासन पर श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हैं और पास पांचों पाण्डव और द्रौपदी विचार में बैठे हुए हैं)

(नेपथ्य में खड़खड़ाहट)

युधिष्ठिर—(घबड़ाता हुआ) हे पवननन्दन ! क्या यह दुर्वासा ऋषिके आने का शब्द है।

भीमसेन—महाराजकी जैसी आज्ञा। बाहर जा देख भाल कर निवेदन करता हूँ कि महाराज पवन के चलने से वृक्षों का शब्द है।

श्रीकृष्णचन्द्र—(आप ही आप दुर्वासा ऋषि का सब वृत्त जानकर) (प्रकट) धर्मनन्दन! आप लोग अब मत घबराओ चाहो तो अभी शिष्यों सहित दुर्वासा ऋषिको बुलालेओ।

युधिष्ठिर—हे कृपासागर भक्तवत्सल! यद्यपि आप अभी यहां ही विराजमान हैं तो भी दुर्वासा ऋषिकी सुध करके बारंबार हृदय काँपता है।

काल सर्प को दूरतें प्राण लिवावन हेत।
आप बुलावे चावसे को अस मनुज अचेत॥

श्रीकृष्णचन्द्र—धर्मनन्दन! आप चिन्ता छोड़ो चिन्ता से अनेक हानियां होती हैं।

चिन्ता से घटती सुमति धर्म सुमतितें जाय।
धर्म गये दुःख आत है तासों तजिये ताय॥

भीमसेन—(आपही आप) अरे! इनकी माया अपरंपार है ये अनहोनी को भी होनी करसकते हैं। इनकी आज्ञा में तर्क वितर्क करना वृथा है। ऐसे सोच विचार (प्रकट) हे यदुनाथ! आप के भरोसे पर मैं ऋषिराज को बुलाने जाता हूं।

श्रीकृष्णचन्द्र—वीरवर! चाहो तो अपनी गदा को भी साथ लेते जाना।

भीमसेन—मुसक्याकर विदा होता है (सबगये)।

(स्थान जलाशय का तट)

(सत्यव्रत विद्यार्थी इधर उधर विचार करता हुआ टहल रहा है)

सत्यव्रत—(आप ही आप) अरे! वो दूरसे गदा फटकारता, हँसता कूदता आता है सो वो मस्तराम भीमसेन तो नहीं है? (कुछ आगे बढ़कर) ओहो! यह तो वही है (चिन्ता से) आज अच्छे से पाला पड़ा, फिर धीरज धरकर अपन तो गुरुसेवा में खड़े हैं।

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—(आप ही आप) मुदित होकर अरे! उस श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा से तो अपना सब संकट कटगया यहां तो न वे ऋषि और न उनके चेले चाँटी। अच्छा यह एक ऋषिकुमार खड़ा है चलो इसीसे पूछें, पास जाकर (प्रकट) ऋषिकुमार! अभिवन्दे।

सत्यव्रत—राजन्! शिवमस्तु।

भीमसेन—(आप ही आप तथास्तु) (प्रकट) आप कौन है?।

सत्यव्रत—मैं महर्षि दुर्वासा का शिष्य हूं।

भीमसेन—ऋषिपुत्र! महर्षि कहां है?।

सत्यव्रत—राजन्! वे शिष्यों सहित आश्रम को गये।

भीमसेन—ऋषिकुमार! क्या कारण है?।

सत्यव्रत—राजन्! आज न जाने क्या होगया जो हम सबको बारंबार डकारें आती हैं, पेट आफरे से पेले फूल रहे हैं कि अन्न पर से रुचि हटगई।

भीमसेन—(आपही आप) अत्यंत प्रसन्न होकर। (प्रकट) वाह वाह! कभी ऐसा भी हो सकता है, जो निमंत्रण मान के घर बैठ रहें और बना बनाया अन्न योंही धरा रहे।

सत्यव्रत—भाई तुम चाहो सो कहो। आपको हमने गुरुजी का अभिप्राय कह सुनाया। "वे विना भोजन किये ही तृप्ति मान चुके हैं"।

भीमसेन—अच्छा महाराज! यहां तो राजा युधिष्ठिर का ही कहना चलेगा, यदि मेरा वश चलता तो वह राँधा हुआ धान आप सबको जैसे तैसे खिला कर छोड़ता।

सत्यव्रत—रणवीर! आप प्रतीक्षा न करें, "आज्ञा दीजिये"।

भीमसेन—ऋषिपुत्र होले होले सिधावें। (दोनों गये)

(स्थान पाण्डवों का आश्रम)

श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हैं और आसपास युधिष्ठिरादि सहित द्रौपदी बैठी हैं।

(उमंग से भरे भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—महाराज! चिन्ता मत करो, दुर्वासा ऋषि तो कहीं चल दिये।

युधिष्ठिर—(हर्ष से उठकर) भीमसेन से मिलकर, क्या यह सच बात है?।

भीमसेन—महाराज! क्या यह आपका अनुज कभी झूंठ बोलता है?।

युधिष्ठिर—(श्रीकृष्ण की ओर देखकर) कृपानिधान! यह सब आपही का प्रताप है, जो लोहे को सुवर्ण कर दिखाया। सब मिल पूजन कर प्रार्थना करते हैं।

प्रभुसम मित्र न जग में कोई।

विपतिकाल में सुमिरत आवें, भक्तों के मन का दुख जोई।
और सभी तो सुख के साथी, दुख के समय लेत मुख गोई॥
अधम उधारन नाम तिहारो, ऐसो दूसर कोइन होई।
बारबार विनती त्रिपाठि की, मनके कल्मष दीजिय धोई॥
तारा जलधारा तथा, सब तरुअन के पात।
संख्या में आजायँ पुनि, तवगुण अंत न आत॥
नाम अनेकनमें हमें, दीनबन्धु यह नाम।
सब विधि सच्चा लगत है, देखि आपके काम॥

(फिर सब प्रदक्षिणा कर अपने २ आसनों पर बैठते हैं)

श्रीकृष्णचन्द्र—हे महानुभावो! मुझे द्वारका जाने की आज्ञा दो।

युधिष्ठिर—(कातर होकर) महाराज! मैं कैसे कहूं।

श्रीकृष्ण—धर्मनन्दन! आप सबको महा संकट में जान द्वारका-वासियों से बिना कहे सुने यहां आया हूं सो वे बहुत सोच करते होंगे। इसलिये अभीतो शीघ्र ही मुझे बिदा करदो।

युधिष्टिर—कृपासागर ! इस संसार में हमारा हितचिन्तक और रक्षक आप जैसा दूसरा कोई नहीं है सो आपका क्षणभर का विरह भी असह्य है ।

जैसे शशिके दरस को, चाहत नित्य चकोर ।
तैसे राउर मूर्त्ति का, ध्यान धरत मन मोर ॥

श्रीकृष्णचन्द्र—हे द्रौपदी सहित पाण्डुपुत्र महोदयो ! आपकी भक्ति से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं सो कोई वर मांगो ।

युधिष्ठिरादि—सब हाथ जोड़ प्रार्थना करते हैं कि हे भक्त-वत्सल ! आपकी कृपा से सब आनन्द हैं परन्तु आप जो वरदान देना ही चाहते हैं तो यह वरदान दीजिये ।

स्वर्ग और अपवर्ग सुख, जिसके सुललित फूल ।
ऐसी भक्तिलता हृदय, हरित रहै सुखमूल ॥

श्रीकृष्ण—तथास्तु ।

पाण्डव—धन्य धन्य महाराज ! ।

श्रीकृष्ण—धीरे २ पधारते हैं और पाण्डव उनको पहुंचाने चलते हैं आकाश से पुष्पवृष्टि होती और श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान होते हैं ।

युधिष्ठिर—हर्ष से (ऊपर की ओर देख कर) अहाहा यह कैसा श्रवण सुखद वीणा का शब्द है ।

एक ओर से फूल बरसाती हुई दो अप्सरायें और दूसरी ओर से फूल बरसाते हुए दो गन्धर्व आते हैं ।

दोनों अप्सरायें गान करती हैं।

धन धन धन द्रौपदि तुव भाग ॥

तेरे गुण की अकथ कहानी, अनुपम कृष्णचरण अनुराग।
पतिव्रत तोर विचित्र विदित अस, चीर सिन्धु को धवलो झाग।
सिद्धिपात्र रविते पाकरके, तुष्ट किये सुरमुनि नर नाग।
बारंबार अशीस हमारी, भोगो आप अखण्ड सुहाग ॥ ४ ॥

गन्धर्व-धर्म अब दिन दिन उन्नति पाय।

ब्राह्मण चारों वेद पठन कर, धर्मध्वजा फहराय।
क्षत्रिय न्यायपरायण होकर, दीनपाल कहलाय ॥
वैश्य सत्य के पथ पै चल के, पुनि व्यापार बढ़ाय।
शूद्र पूर्वजों की मर्यादा, पालि उन्नति को चाय ॥
ब्रह्मचर्य आश्रम सबही मिल, दृढ़ता से ठहराय।
पनि गृहस्थ अतिथिन की सेवा, कबहुं न कोइ भुलाय ॥
वानप्रस्थ ममता को तज के, परहित कारन धाय।
लै संन्यास त्याग हिंसादिक, ईश चरण को ध्याय ॥

आकाश में फूल बरसते हैं.

भरत वाक्य।

इन्द्र वर्षा कर समय पै, सस्य युत धरणी करैं।
गायें अमृतसम दूध को, देती हुई निर्भय चरैं ॥
सब रोग शोक विनाशकारक, वायु चारों दिशि बहैं।
सब जीव जन्तु सुराज्य * में, सुख पाय चिरजीवित रहैं ॥

पाण्डव—तथास्तु।

---

* राजराजेन्द्र श्री पंचमजार्ज का साम्राज्य समय।

अप्सरा और गन्धर्व विमानपर चढ़ सिधाते हैं। और पाण्डव ऊपर को देख २ हँसते हैं। "धीरे २ परदा सरकता है" ॥

इति पंचमोऽङ्कः।

उमारमण के भक्त, तिवाड़ी चन्द्रभाणजी।
तिनके सुत थे तीन, उदय, स्नेहि, हर, सुजाणजी।
स्नेहिलाल के तनुज, कन्हैयालाल उदारा।
उनके बदरीलाल, धर्मरत कुल उजियारा।
दोय पुत्र उनके भये, शिवदत्त ज्येष्ठ शिवपद निरत।
रामदत्त लघुसुत भयो, रघुपति चरित्र में चित धरत ॥

शिवमस्तु ॥

इति श्रीपुष्करारण्यान्तर्गत अजमेर नगर वास्तव्य श्रीगंगवाणाधीशाश्रित, श्रीदधीचि कुलावतंस राजगुरु पंडित बदरीलालात्मज, श्रीमती जानकी गर्भ समुत्पन्न, श्रीकृष्णचरण चंचरीक, साहित्योपाध्याय शिवदत्त काव्यतीर्थ विरचित श्रीपाण्डव भक्तिपरिचय नाम नाटकं।

॥ समाप्तम् ॥

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पं०	अ०	शु०
१	११	सूत्रधार और नट	सूत्रधार
३	४	(नटका प्रवेश)	
१२	१०	मेरी	मेरी भी
१५	२	देव	देवे
२०	१८	करने	करने वाले
२०	१२	विद्वत्ता	और विद्वत्ता
२४	२३	देवं	देवें
२६	१	त्वावास्तां	त्वौ भूयास्तम्
२६	५	आशीप्	आशीस
३२	१	अर्जुन	ऋषिगण
३४	२५	द्वीपों	खण्डों
३८	१२	देव	देव-जो आज्ञा
४०	१०	कूकर सब	कूकर
४०	१५	आप	फिर
४०	१५	अयदेरक्यों	आपहीलको
४२	१५	लेऊं	लेउँ
४२	२०	रमण करत	रमत
४४	५	हरण	हरिण
५१	६	आयुष्मान्	शिवानिसंतु
५२	४	अस	फैले
५४	१२	दरशाया	दरसाया
५६	८	ध्यान	ध्यान
५७	६	पांडु	पंडु
६१	८	मैं तो	मैं भी
६२	१	कोमुदी	कौमुदी
६५	१२	करें	करें और

विज्ञापन ।

विदित हो कि सर्वसाधारण के हितार्थ गवर्नमेण्ट हाई-स्कूल के प्रथमाध्यापक त्रिपाठि शिवदत्त काव्यतीर्थ ने नीति-सम्बन्धी उत्तमोत्तम श्लोकों के ७०० दोहे बनाकर 'शिवसतसई' नाम की संग्रह करने योग्य एक पुस्तक बनाई है । जिसका मूल्य भी ।) मात्र है, सो जिन महाशयों को लेना होवे कृपया निम्नलिखित ठिकाने से मँगावें ।

हेडपण्डित रामदत्त त्रिपाठी,

मिशनहाईस्कूल, अजमेर.

इस पुस्तक पर महाशयों की सम्मतियां:—

शिक्षाप्रदम्पुस्तकमद्य विद्वन् दृष्ट्वा कृतार्थोऽस्मि भवत्प्रसादात् ।
लाभाय लोकस्य भवेदवश्यश्चित्तप्रसादाय विपश्चिताञ्च ॥

महामहोपाध्याय श्रीमान् पण्डितवर डाक्टर गङ्गानाथ झा, एम. ए. प्रधान संस्कृताध्यापक म्यौअर सैन्ट्रल कालेज प्रयाग.

शिवसतसई—गवर्नमेंट हाईस्कूल, अजमेर के अध्यापक पं० शिवदत्त काव्यतीर्थ ने इस पुस्तक को लिखी है। इसमें हिन्दी के विविधविषय के ७०० दोहे हैं, जो संस्कृत के अनेक सुभाषित और नीतिग्रन्थों के श्लोकों की छाया लेकर रचे गये हैं। दोहे शिक्षाप्रद, सरल और सुन्दर हैं। जैनहितैषी ॥

'शिवसतसई'—रचयिता साहित्योपाध्याय शिवदत्त काव्य-तीर्थ, अध्यापक गवर्नमेंट स्कूल, अजमेर । बिहारी की सतसई की तरह इसमें भी प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ७०० दोहे हैं। अभ्युदय ॥